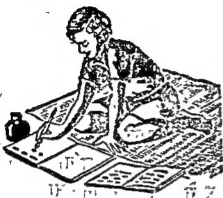
रवीन्द्र बाल साहित्य



देवनागर प्रकाशन
चौड़ा रास्ता, जयपुर

मूल्य : पैंतालीस रुपये
प्रकाशक : देवनागर प्रकाशन, चौड़ा रास्ता जयपुर
मुद्रक : एलोरा प्रिन्टर्स, जयपुर
संस्करण : 1989

विषय सूची



परीक्षा

पात्र परिचय

छात्र का नाम : मधुसूदन

छात्र के पिता : अभिभावक

छात्र के मास्टर : कालाचांद

(कमरे में मास्टर कालाचांद छात्र मधुसूदन को पढ़ा रहे हैं)

अभिभावक (प्रवेश करते हुए मास्टरजी से) मधुसूदन की पढ़ाई कैसी हो रही है, कालाचांद बाबू ?

कालाचांद हां मधुसूदन शैतान तो है, लेकिन पढ़ाई लिखाई में बहुत तेज है? कोई भी बात

दूसरी बार नहीं बतानी पड़ती है। एक दफा पढ़ाने के बाद कभी भूलता ही नहीं है।

अभिभावक यही बात है, तो मैं आज ही इसका इम्तिहान लेकर देखता हूं।

कालाचांद प्रसन्नता से।

मधुसूदन (अपने मन में) कल इस मास्टर साहब ने ऐसी पिटाई की थी कि आज भी कमर में दर्द हो रहा है, आज मैं बदला लूंगा। इन मास्टरजी को घर से बाहर न निकला दिया तो मेरा भी नाम मधुसूदन नहीं।

अभिभावक (मधु से) क्यों रे मधु, पिछला पढ़ा हुआ भूला तो नहीं?

मधुसूदन मास्टर साहब ने जो कुछ पढ़ाया है, वह सब याद है।

अभिभावक बहुत अच्छा, यह बताओ कि उम्मीद किसे कहते हैं?

मधुसूदन मिट्टी को फोड़कर ऊपर की ओर जो निकल आये उसका नाम उम्मीद है।

अभिभावक उदाहरण देकर समझाओ।

मधुसूदन केंचुआ।

कालाचांद (आंखें फाड़कर) ऐं! क्या बकता है?

अभिभावक आप तनिक ठहरिए, मास्टर साहब ! इस समय आप कुछ न कहिये, (मधुसूदन से) तुमने कविता का पाठ पढ़ा है; यह कहो कि कानन में क्या खिलता है ?

मधुसूदन काँटा ।

(मास्टर कालाचांद बेंत उठाकर दिखाते हैं)

मधुसूदन क्यों मास्टर साहब ? आप पिटाई क्यों करते हैं ? क्या मैं असत्य कहता हूं ।

अभिभावक अच्छा यह बताओ, सिराजुद्दोला का विनाश किसने किया ? इस बारे में इतिहास क्या कहता है ?

मधुसूदन कीड़ों ने ।

(मधुसूदन की पीठ पर बेंत की मार पड़ती है)

मधुसूदन जी, व्यर्थ में ही पिटाई भोगनी पड़ती है । केवल सिराजुद्दोला को ही क्यों ? समूचे इतिहास को ही कीड़े चाट गये ।

(कालाचांद अपना सिर खुजलाते हैं ।)

अभिभावक मधु ! व्याकरण याद है ?

मधुसूदन याद है ।

अभिभावक यह बताओ, कर्त्ता क्या है ? उदाहरण सहित समझाओ ।

मधुसूदन कर्त्ता तो उस टोले के जयलाल मुन्शी हैं।

अभिभावक यह कैसे ?

मधुसूदन वह सदैव क्रिया कर्म को ही साथ लिये रहते हैं।

कालाचांद (क्रोध में) तुम्हारा सर !

(पीठ पर बेंत की मार पड़ती है)

मधुसूदन (चौंकता हुआ) मास्टर साहब ! यह सिर नहीं, यह मेरी पीठ है।

अभिभावक यह बताओ, षष्ठी तत्पुरुष किसे कहते हैं।

मधुसूदन मुझे पता नहीं।

(कालाचांद फिर बेंत दिखाते हैं)

मधुसूदन मास्टर साहब ! इसे तो अच्छी तरह पहचानता हूं। यह यष्टि तत्पुरुष है।

(अभिभावक को हंसी आ जाती है और मास्टर कालाचांद के मुख पर रुंवासापन छा जाता है।)

अभिभावक मधु ! अंक गणित पढ़ा है ?

मधुसूदन जी हां।

अभिभावक अच्छा, यह बताओ, तुम्हें साढ़े छह पेड़े दिये गये और यह कहा गया कि पांच मिनट तक पेड़े खाने के बाद जो पेड़े शेष रह जायें उन्हें तुम अपने छोटे भाई को दे दो। एक

पेड़ा खाने में दो मिनट लगते हैं। बताओ कितने पेड़े तुम अपने भाई को दोगे ?

मधुसूदन एक भी नहीं।

कालाचांद यह कैसे ?

मधुसूदन सारे पेड़े मैं ही खा डालूंगा। एक भी नहीं दे पाऊंगा।

अभिभावक अच्छा, यह बताओ, एक बड़ का वृक्ष प्रति-दिन चौथाई इंच ऊंचा होता है। इस बैशाख की पहली को वह पेड़ दस इंच का था, तो आगामी वर्ष बैशाख की पहली को वह कितना ऊंचा हो जायेगा ?

मधुसूदन वृक्ष टेढ़ा हो जाय तब तो कहना कठिन है। यदि सीधा ऊपर की ओर बढ़ता रहा तो नाप कर देखने पर ही उसकी ऊंचाई का पूरा सही पता लग सकेगा और यदि इसी बीच सूख गया, तब तो कोई बात ही नहीं।

कालाचांद बिना पिटाई के तुम्हारी बुद्धि का दरवाजा नहीं खुलता है। कमबख्त ! पीट-पीटकर कमर लाल कर दूंगा। तभी तुम सीधे हो सकोगे।

मधुसूदन मास्टर साहब ! पिटाई होने पर तो सीधी से सीधी वस्तु भी टेढ़ी हो जाती है ।

अभिभावक कालाचांद बाबू, यह आपका वहम है । पिटाई से शायद ही कोई काम पूरा हो पाता हो ! कहा भी गया है कि गधे को मार-मार कर घोड़ा नहीं बनाया जा सकता है, लेकिन प्राय: घोड़ा मार खा-खाकर गधा बन जाता है । ज्यादातर लड़के सीख सकते है, पर अधिकांश मास्टर सिखा ही नहीं सकते और मार पड़ती है बेचारे छात्र पर ही । आप अपनी बेत-छड़ी सहित यहाँ से विदा हो जाईये । कुछ दिन के लिए यह अपनी पीठ सुस्ता ले तो मैं खुद ही इसे पढ़ाया करूंगा ।

मधुसूदन (मन ही मन) ओह ! प्राण बचे ।

कालाचांद प्राण बचे साहब ! इस लड़के को पढ़ाना किसी मजदूर का कार्य है । तीस दिन एक छात्र को पीटने पर मुझे केवल पांच रुपये प्राप्त होते हैं, उतने श्रम से यदि कहीं छत-वत भी पीटूं तो कम से कम दस रुपये तो मिल ही जायेंगे ।

(कालाचांद कहता हुआ घर से बाहर आता है)

(पटाक्षेप)



ख्याति का नाटक

पात्र-परिचय

दुकौड़ीदत्त	: वकील
कंगालीचरण	: संस्था संचालक
किरानी	: पड़ौसी
अभ्यागत	: चंदा चाहने वाले सज्जन
हर शंकर	: वकील का मित्र

अन्य पात्र

नौकर, तानपूरे वाला, तबलची, बहीवाला आदि

पहला दृश्य

कमरे में वकील दुकौड़ीदत्त कुरसी पर बैठे हुए हैं।

दुकौड़ीदत्त (आगन्तुक की ओर देखकर) कहिए, आपव क्या चाहिए ?

(कंगालीचरण अपने हाथ में बही लिये हुए भयभीत मुद्रा में प्रवेश करते हैं)

कंगालीचरण आप महाशय हैं देश का हित चाहने वाले....

दुकौड़ीदत्त जो है सो है, लेकिन आप क्या चाहते हैं ? वकालत करता हूं, यह भी किसी से छिपा हुआ नहीं है । आपका मामला क्या है ?

कंगालीचरण कहना तो कुछ खास नहीं हैं ।

दुकौड़ीदत्त तो शीघ्र ही कह दीजिए ।

कंगालीचरण तनिक डूबकर देखने पर आपको यह तो स्वीकारना ही होगा कि 'गानात् परतम् नहि

दुकौड़ीदत्त भ्राता ! डूबकर देखने और स्वीकारने से पूर्व यह जरूरी है कि जो बात तुमने कही है उसका अर्थ जान लिया जाय । उसका अनुवाद करके बताओ ।

कंगालीचरण अनुवाद तो सही-सही मैं भी नहीं कर सकता, लेकिन मतलब यह है कि गायन जो चीज है उसे सुनने में बहुत आनन्द आता है।

दुकौड़ीदत्त सबको आनन्द नहीं आता ।

कंगालीचरण जिसे गायन अच्छा नहीं लगता है, वह होता है—

दुकौड़ीदत्त वकील दुकौड़ीदत्त।

कंगालीचरण इस तरह न कहिए।

दुकौड़ीदत्त तब मैं क्या असत्य कहूं?

कंगालीचरण आर्य देश में भरतमुनि से पहले—

दुकौड़ीदत्त भरत मुनि पर कोई केस हो तो कहो, अन्यथा यह बकवास बन्द करो।

कंगालीचरण मुझे तो बहुत कुछ कहना था।

दुकौड़ीदत्त किन्तु मेरे पास बहुत बातें सुनने का वक्त नहीं है।

कंगालीचरण मैं आपको सार में ही निवेदन करता हूँ। इस महानगर में 'गातोन्नति-विधायनी' नाम की सभा को नींव रखी गई है, उसमें महाशय को....

दुकौड़ीदत्त भाषण करना होगा।

कंगालीचरण महाशय, नहीं।

दुकौड़ीदत्त सभा की अध्यक्षता करनी होगी।

कंगालीचरण नही महाशय!

दुकौड़ीदत्त तब फिर क्या करना होगा? कुछ कहो तो सही, गायन गाना और सुनना–ये दोनों

मेरे द्वारा कभी नहीं हुए और न होंगे। यह बात मैं पहले ही बता देना चाहता हूं।

कंगालीचरण महाशय को इन दोनों में से एक भी कार्य नहीं करना होगा।

(कंगालीचरण वकील के सामने बही बढ़ाकर) मात्र यथाशक्ति चन्दा!

दुकौड़ीदत्त (हड़बड़ाकर उठने का अभिनय करते हुए) च……च………चन्दा! आह! नाश हो तुम तो बड़े धूर्त हो! सज्जन आदमी की तरह मुंह लटकाकर आये तो मैं समझा किसी केस में फँसे हुए हो! चन्दे की यह बही उठाओ और यहां से अभी निकल जाओ, अन्यथा ट्रेसपास के अपराध में पुलिस में मामला दर्ज करा दूंगा।

कंगालीचरण आया माँगने चन्दा और मिला गरदन पर प्रहार। (मन में) महाशय! तुम्हें भी सबक सिखाकर रहूंगा।

(कंगालीचरण अपनी बही उठाकर निकल जाता है)

दूसरा दृश्य

(दुकौड़ीदत्त अनेक अखबार लिये स्टेज पर आते हैं)

दुकौड़ीदत्त यह तो विचित्र और मजेदार बात है ! न जाने यह कंगालीचरण नाम का कौन आदमी है ? जिसने बंगला, अंग्रेजी आदि सभी समाचार पत्रों में समाचार प्रकाशित कराया है कि वकील दुकौड़ीदत्त ने अर्थात् मैंने इन आदमियों की 'गानोन्नति विधायिनी' नामक सभा को चन्दे में पाँच हजार रुपयों का दान दिया है । दान देना तो दूर रहा, मैंने तो गरदन पकड़कर बाहर निकाला था । खैर, जो कुछ भी हो, बिना दिये ही मेरा बहुत प्रचार हो गया । इस समाचार से मुझे अपने धन्धे में बहुत लाभ रहेगा, बहुत सहायता मिलेगी, लाभ तो उन लोगों को भी होगा, लोग समझेंगे कि सभा को पाँच हजार रुपये का चन्दा मिला है, अवश्य ही बहुत बड़ी सभा होगी । इसका नतीजा यह होगा कि और भी कितने ही आदमियों से भारी भारी राशि चन्दे में सभा को मिलने लगेगी । जो कुछ भी हो, मेरे भाग्य अच्छे हैं ।

(किरानी नामक आदमी का प्रवेश)

किरानी — महाशय न. गानाशति नामक सभा को पांच हजार रुपये का चन्दा दिया है ।

दुकौड़ीदत्त — (सिर के बालों में अगुलियां देते हुए) जी, वह भी कोई बात हुई ? यह बात सुनते ही क्यों हो ? आपसे किसने कहा कि दिये हैं। और मान लीजिए कि दिये ही हैं तो यह कौन सी बड़ी घटना हो गई । इसमें प्रचार की क्या ज़रूरत है ।

किरानी — ओह ! नम्रता भी हो तो ऐसी हो । नकद पांच हजार की राशि दान करने पर भी ज़ाहिर न करने की कोशिश ! यह किसी आम आदमी का काम नहीं ।

(इसी बीच नौकर का प्रवेश करना)

नौकर — नीचे कमरे में बहुत से आदमी एकत्रित हो गये हैं ।

दुकौड़ीदत्त — (मन में) देखा, एक ही दिन में कितना प्रचार हो गया ? कितना नाम फैल गया ? (प्रसन्नता के साथ नौकर से) एक-एक करके ऊपर ले आओ ! अरे ! हाँ, पान-जर्दा तो दे जा ।

(एक आदमी का प्रवेश)

दुकौड़ीदत्त — (कुरसी आगे करते हुए) आइये, बैठिये !

हाँ, महाशय ! तब तक पान-जर्दे से शौक फरमाइये। (नौकर से) ! पान-जर्दा देजा !

अभ्यागत (मन ही में) ओह ! कितना सरल स्वभाव है ! इनसे लक्ष्य पूरा न हुआ तो किससे होगा ?

दुकौड़ीदत्त तो कहिये महाशय; किस प्रयोजन से आपका आना हुआ ?

अभ्यागत आपकी उदारता, दानशीलता देश प्रसिद्धि .... !

दुकौड़ीदत्त अरे, उन खबरों को सुनते ही क्यों हो ?

अभ्यागत उत्तर नहीं इस नम्रता का ? महाशय का आज तक केवल नाम ही सुना था। आज आँखों से देखने और कानों से सुनने का मौका भी मिल गया।

दुकौड़ीदत्त (मन में) अब वास्तविक बात पर आया जा सकता है। नीचे बहुत से आये हुए बैठे हैं। (अभ्यागत से) तो महाशय ने अपने आने का प्रयोजन नहीं प्रकट किया ?

अभ्यागत देश की उन्नति के लक्ष्य को······ ···· ।

दुकौड़ीदत्त अजी, रहने दीजिए इन बातों को।

अभ्यागत यह भी आपने उचित ही फरमाया आप जैसे

महोदय की तरह जिन महोदय आदमियों ने इस देश में……… ।

दुकौड़ीदत्त ठीक है । आपकी विजय हुई और मेरी पराजय । आपकी सभी बातें मंजूर हैं । अतः आप अपने इस कथन के बाकी बचे भाग को छोड़ दीजिए । उसके पश्चात्………

अभ्यागत विनयी की प्रकृति का तो लक्षण ही यही है कि अपने गुणों का कीतन………

दुकौड़ीदत्त मुझ पर कृपा कीजिए महाशय । मुद्दे की बात बताइये ।

अभ्यागत जानते हैं, मुद्दे की बात क्या है ? हमारा राष्ट्र दिन ब दिन पतन की ओर जा रहा है ।

दुकौड़ीदत्त इसका एक मात्र कारण है कि हम बात को कम शब्दों में कहना नहीं जानते ।

अभ्यागत हमारा देश, हमारी सुनहले धानों से भरी यह भूमि, गरीबी के अन्धे कुवे में…. ।

दुकौड़ीदत्त (पराजित भाव से अपने सिर पर हाथ रखता हुआ) कहते जाइये महाशय !

अभ्यागत दरिद्रता के अन्ध कूप में दिनानु दिन निमज्जमाना ।

दुकौड़ीदन महोदय, मैं कुछ भी नहीं समझ पा रहा हूँ ।

अभ्यागत तब आप से असल बात कह दूँ ।

दुकौड़ीदत्त (प्रसन्नता के साथ कुर्सी पर उछलता हुआ) हाँ, महाशय ! यह उचित होगा ।

अभ्यागत अंग्रेजों ने हमें लूट लिया और आज भी वे हमें लूटते जा रहे हैं ।

दुकौड़ीदत्त हां, महाशय ! यह बात हुई । बहुत अच्छा मामला है । सबूत इकट्ठे कर लीजिए तो जज की अदालत में केश दायर कर दूँ ।

अभ्यागत जज भी लूटता है ।

दुकौड़ीदत्त तो फिर डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट की अदालत में....

अभ्यागत वह तो डाकू है ।

दुकौड़ीदत्त (आश्चर्य के साथ देखता हुआ) आपका कथन तनिक भी समझ में नहीं आ रहा है ।

अभ्यागत मैं कहना चाहता हूँ कि इस देश की सम्पत्ति दूसरे देशों में जा रही है ।

दुकौड़ीदत्त बहुत दुःख की बात है ।

अभ्यागत इसी कारण एक सभा.......

दुकौड़ीदत्त (कुर्सी से उठते हुए) सभा !

अभ्यागत इसे देखिए, बही (बही दिखाता है)

दुकौड़ीदत्त (आँखें निकालकर) बही !

अभ्यागत — यथा शक्ति चन्दा !

दुकौड़ीदत्त — (कुर्सी से उछलता है) चन्दा ! यहाँ से बाहर निकल जाओ ! चले जाओ यहाँ से ! निकलो ! अभी निकलो ।

[इसी आवेश में कुरसी उलट जाती है, फर्श पर स्याही गिर जाती है, अभ्यागत वेग सहित निकलने का अभिनय करता है]

[दूसरे आगन्तुक का कक्ष में प्रवेश]

दुकौड़ीदत्त — महाशय ! कहिये, आपको क्या चाहिए ।

दूसरा — महोदय की देश प्रसिद्ध दानशीलता ।

दुकौड़ीदत्त — बस ! यह सब सुन चुका । आपके पास कोई नयी बात हो तो सुनाइये ।

दूसरा — आपकी देश-हित भावना.......

दुकौड़ीदत्त — ओह ! मेरा मरण निश्चित है । यह भी वही बातें दुहरा रहा है ।

दूसरा — देश के सभी पुण्य कार्यों के प्रति आपका अनुराग ।

दुकौड़ीदत्त — यह तो कठिन आफत मालूम होती है । वास्तविक कथन स्पष्ट शब्दों में कह दीजिए ।

दूसरा — एक सभा !

दुकौड़ीदत्त — फिर सभा !

दूसरा इस बही को देखिए !

दुकौड़ीदत्त फिर बही । कैसी बही ?

दूसरा दानपत्र । चन्दा ।

दुकौड़ीदत्त दान । [आगन्तुक का हाथ पकड़कर खेंचते हुए] भागो, निकलो यहां से । यदि जीवन चाहते हो तो…

[दान चाहने वाला दूसरा आदमी बिना कुछ कहे सुने बही उठा कर कमरे से बाहर चला जाता है]

[तीसरे आदमी का प्रवेश ।]

दुकौड़ीदत्त उसकी ओर देखते हुए देखियें महाशय । मेरा देश के प्रति हित-प्रेम, उदारता, दानशीलता, नम्रता आदि सभी कथन पूरा हो चुका है । इन सभी को छोड़कर कोई बात कीजिए ।

दूसरा आपकी सार्वभौमिकता, सार्वजनीनता,…

दुकौड़ीदत्त अस्तु । फिर भी कुछ नये शब्द तो लगते हैं । किन्तु महाशय, ये बातें रहने दें, भाषा में बात कीजिये ।

तीसरा हमारा एक पुस्तकालय,

दुकौड़ीदत्त पुस्तकालय । (चैन की श्वास लेते हुए) सभा तो नहीं है न ?

तीसरा महाशय, नही ।

दुकौड़ीदत्त ओह । प्राण बचे । पुस्तकालय । बहुत अच्छा । आगे कहिए ।

तीसरा यह देखिये विवरणिका ।

दुकौड़ीदत्त बही तो नहीं ?

तीसरा महाशय, नहीं । बही नही है, छपा हुआ पत्र है ।

दुकौड़ीदत्त ओह । आगे कहिए ।

तीसरा यथा शक्ति चंदा ।

दुकौड़ीदत्त (उछलकर) चंदा । फिर वही । अरे । मेरे घर डाका रे । ओह । पुलिस ! पुलिस ।।

(तीसरा आदमी गहरी श्वांस लेता हुआ भाग निकला)

(हरशंकर बाबू का कमरे में प्रवेश)

दुकौड़ीदत्त ओह, हरशंकर । आओ, आओ, भाई आओ । महाविद्यालय के अध्ययन के बाद का वह साथ ! ओह । उन दिनों के बाद कभी दर्शन ही नहीं हुए । क्या कहूं, आज तुम्हें देखकर कितना आनन्द प्राप्त हुआ है ।

हरशंकर — दोस्त ! तुम से सुख-दुःख की बहुत सी बातें करनी हैं, किन्तु वे सब फिर किसी दिन करेंगे, पहिले आज काम की बात करलें ।

दुकौड़ीदत्त — (प्रसन्न होकर) बहुत समय के बाद कोई काम की बात सुनने को नहीं मिली । कहो ! (हरशंकर दुसाले की ओट से बही निकाल कर सामने रखते है)

दुकौड़ीदत्त — ओह ! यह क्या ? यह भी उन्हीं की तरह चीज निकाल रहा है ।

हरशंकर — हमारे मुहल्ले के कुछ बालकों ने मिलकर एक सभा……

दुकौड़ीदत्त — (चौंकता हुआ) सभा ?

हरशंकर — हां, हां, सभा । कुछ चन्दा-वन्दा चाहिए ।

दुकौड़ीदत्त — चन्दा ! देखो दोस्त ! तुम्हारे साथ मेरा बहुत पुराना और गहरा सम्बन्ध है, किन्तु इस शब्द का मेरे सामने फिर कभी उच्चारण न करना वर्ना हमेशा-हमेशा के लिए मुंह से बतियाना मुश्किल हो जायेगा । मैं साफ-साफ कह देता हूं ।

हरशंकर — ठी……क । तुम न जाने क्यों उस ऐरी-गैरी ग्रामोन्नति सभा को पांच हजार रुपये का

चन्दा दे सकते हो, लेकिन अपने दोस्त की प्रार्थना पर पांच रुपये की रसीद भी नहीं कटवा सकते ! यहां कौन मूर्ख और पाखंडी होगा जो तुम्हारे यहां आंगन में थूकने आयेगा ।

(हरशंकर आवेग के साथ कमरे से बाहर निकल जाता है)

(हाथ में बही लिए एक आदमी का आना)

दुकौड़ीदत्त (उसकी ओर देखते हुए) बही ! फिर बही ! भागो ! निकलो ! यहां से भा''' भा''''''ग जाओ !

बहीवाला (भयभीत मुद्रा में) महाशय ! मैं नन्दलाल बाबू का'''''' ।

दुकौड़ीदत्त भाग जाओ ! मैं नन्दलाल वन्दलाल कुछ नहीं जानता । यहां से फौरन निकल जाओ ।

बहीवाला महाशय ? ये रुपये ।

दुकौड़ीदत्त रुपये उपये कुछ नहीं है, मैं कुछ भी नहीं दूंगा । निकलते हो कि नहीं वर्ना''''' ।

(बहीवाला भाग जाता है)

किरानी साहब ! आपने यह क्या किया ? यह आदमी नन्दलाल बाबू के यहां से आपके

रुपये लेकर आया था। उन रुपयों के बिना आज दिन भर का काम कैसे चलेगा ?

दुकौड़ीदत्त ओह ! बुलाओ ! उस आदमी को जल्दी बुलाओ !

(किरानी दौड़कर बाहर जाता है और कुछ क्षण के बाद पुनः आता है)

किरानी वह आदमी तो चला गया। बहुत देखा पर कहीं भी दिखाई नहीं दिया।

दुकौड़ीदत्त (सिर पर हाथ रखता हुआ) ऐसा लगता है भयंकर चक्कर में फंस गये हैं। न जाने आज कैसी मुसीबत है ?

(तानपुरा हाथ में लिए एक आदमी का भीतर आना)

दुकौड़ीदत्त क्या बात है ?

तानपुरावाला हुजूर ! आप जैसा रसिक कोई दूसरा नहीं होगा। संगीत के विकास के लिए आपने क्या नहीं किया। आपको गीत सुनाऊँगा।

(तानपुरा की झंकार के साथ गाता है)

जय जय दुकौड़ीदत्त,
जग में निरुपम महत्व......
जय जय दुकौड़ीदत्त।

दुकौड़ीदत्त (अपने कानों पर हाथ रखते हुए) अनर्थ ! महान अनर्थ ! रुक जाओ ! बस करो !
(इसी बीच तानपुरा लिये दूसरा आदमी आता है ।

दूसरा महाशय ! यह बेचारा गाना क्या जाने ? मैं सुनाता हूँ ।
धन्य दुकौड़ीदत्त धन्य——— ।

पहला ज''' ज''''ज '''ज''' य''''य''''य ।

दूसरा ध''''ध''''अ ''''न्य ।

दुकौड़ीदत्त (कानों पर हाथ रखते हुए) ओह ! मैं मरा, मैं मर गया, रक्षा करो ! मेरी रक्षा करो ।
(तभी एक आदमी तबलों की जोड़ी लिए प्रवेश करता है ।)

तबलेवाला महाशय ! संगीत के बिना गाने की रंगत कैसी ? यह भी कभी हुआ है ?
(तबला बजाता है)
(इसी मध्य दूसरा तबलची आता है)

दूसरा हुजूर ? यह अधम संगत-वंगत क्या समझे ?

तबलेवाला इस नीच को तो तबले के हाथ लगाना भी नहीं आता ।

पहला तू ठहर जा ।

दूसरा तू ही ठहरजा !

पहला तेरा गाने–वाने और बजाने से क्या रिश्ता ?

दूसरा तुझे क्या आता है ? तू क्या समझता है ?

(दोनों तानपुरे वाले राग पर बहस करते हैं।)

(आखिर दोनों ही तानपूरों से लड़ाई लड़ने लगते हैं।

(दोनों तबलची भी ता धिन, धिकिटि बोल बोलते हुए तबलों से लड़ाई लड़ते हैं।)

(संगीतज्ञ, गायक और चन्दे मांगने वालों का एक साथ कमरे में आना)

पहला महाशय गीत ?

दूसरा हुजूर, चन्दा !

तीसरा महोदय, सभा !

चौथा आपकी उदारता

पांचवां राग–रागिनी का ख्याल

छठा देश का कल्याण।

सातवां तबले पर मियां के हाथ का ठप्पा !

आठवां ओ ! तू ठहर जरा।

नवां मुझे भी अपनी कह लेने दे।

(सभी वकील साहब की चादर खेंचने लगते हैं। एक ही स्वर गूंज रहा है—

हुजूर सुनिये ? महाशय सुनिये ? मेरी भी सुनिये ? हांजी, मेरी भी सुनिये।)

दुकौड़ीदत्त (परेशान होकर किरानी की ओर देखता हुआ) मैं तो अपने ननिहाल जा रहा हूँ। कुछ वक्त अपने मामा के यहां बिताऊगा। खबरदार ? मेरा ठिकाना किसी को न बताना।

(वकील घर से बाहर आ जाता है)

(कमरे में गायक और संगीतज्ञ घमासान लड़ाई करने में व्यस्त। झगड़ा समाप्त कराने में किरानी घायल हो गिर जाता है।)



बिरछा बाबा

पात्र-परिचय

ऊधो

गोवरा

पाँचू

पूपू

ऊधो — क्यों रे, कुछ मालूम हुआ ?

गोवरा — अरे भाई ! तुम्हारे कहने पर आज एक महीने से जंगल-जंगल में भटकता फिर रहा

हूं। खोजते-खोजते मेरे हाड़ भी चकनाचूर हो चले, लेकिन् उसकी चुटिया तक भी नजर नहीं आई।

पांचू किसको खोज रहा है भाई!

गोबरा बिरछा बाबा को।

पांचू अरे यह कौन है बिरछा बाबा?

ऊधो तू नहीं पहिचानता, सारा जगत उसे पहिचानता है।

पांचू हो सकता है। लेकिन यह तो कहो कि बिरछा बाबा की बात क्या है?

ऊधो बिरछा बाबा जिस वृक्ष पर चढ़ बैठता है वही वृक्ष मुँहमांगा फल देने लगता है। उस वृक्ष के नीचे खड़े हो हाथ फैला कर याचना करने पर मुँहमांगी इच्छा पूरी हो जाती है।

पांचू यह सब तुमसे किसने कहा?

ऊधो गूदड़ ग्राम में रहने वाले भेकू सरदार ने। एक दिन बिरछा बाबा गूलर के वृक्ष पर बैठा हुआ अपने पैर हिला रहा था—उस दिन भेकू सरदार भी उस वृक्ष के नीचे से गुजर रहा था। उसे कुछ भी मालूम न था। भेकू के सिर पर हांडी थी। हांडी में शोरा भरा हुआ

था। सरदार हुक्के का तम्बाकू बनाने के लिए शोरा लिये जा रहा था। अचानक घटना घटी कि बाबा के हिलते हुए पैर की ठोकर से हांडी बिखर कर ढुलक पड़ी। शोरे से उसका मुंह नाक आंख आदि सभी भर गये। बिरछा बाबा के मन में दया बहुत है। करुणा के सागर हैं। बाबा बोले—"भेकू! बोलो, तुम्हारे मन में क्या इच्छा। भेकू कुछ नहीं समझ सका, उसकी बुद्धि काम न कर सकी। उसने बाबा से मांगा-एक कपड़ा दे दो, अपना मुंह पोंछ डालूं" भेकू के कथन के साथ ही पेड़ से एक वस्त्र टपक पड़ा। मुंह-आंख पोंछकर भेकू ने वृक्ष की ओर देखा। ऊपर कोई नहीं। बाबा से एक ही इच्छा के लिये कहा जा सकता है। बस, एक इच्छा कर लेने के पश्चात् चाहे जितना ही रिरियाओ कोई सुनवाई नहीं हो सकती।

पांचू ओह! न शाल मांगा, न दुशाला मांगा, मागा भी तो क्या मांगा? सिर्फ एक अंगोछा लेकिन भेकू में इतनी अक्ल कहा है?

ऊधो जो हुआ सो हुआ। उसे क्या? उस अंगोछे

से ही उसके सारे काम बन रहे हैं। तुम्हें पता नहीं ? रथ मेले के नजदीक भेकू ने आठ छप्परों वाला आलीशान बंगला बनवाया है। अंगोछा ही सही, वह साधारण नहीं, बाबा का चमत्कारी अंगोछा है।

पांचू यह सब कैसे हुआ ? कोई जादू-वादू तो नहीं है।

ऊधो होंदलपाड़ा में मेला जुड़ा था। वहां भेकू सरदार ने बिरछा बाबा का अंगोछा बिछा कर आसन जमा लिया। हजारों की संख्या में आदमी इकट्ठे हो गये। बिरछा बाबा के नाम पर चढ़ावा आने लगा। अंगोछे पर रुपये, पैसे, आलू, मूली बरसने लगे। स्त्रियां आतीं और मनोतीं करने लगतीं कि-ओ भेकू सरदार ! मेरे बच्चे के सिर से बाबा का अंगोछा छुवा दे, मेरा बच्चा तीन महीने से ताप में तप रहा है। अंगोछा स्पर्श कराने का कानून यह है कि एक रुपया चार आने तो चढ़ावा लगता है और साथ में पांच सुपारी, पांच पाव चावल और पांच छटांक घी भी चढ़ाना होता है।

पांचू — अरे ! यह भी तो बता, चढ़ावे ही चढ़ रहे हैं, लेकिन कुछ फल भी हाथ लग रहा है या नहीं ?

ऊधो — फल क्यों नहीं मिलता ? गाजनपाल ने निरन्तर पन्द्रह रोज तक अंगोछे में भर कर धन दिया और फिर उसकी खूंट में रस्सी बाँधकर एक खस्सी भी चढ़ा आया। खस्सी की आवाज सुनकर बहुत सारे आदमी आ गये। क्या बताऊ ? ग्यारह माह के बाद ही गाजन पाल को काम मिल गया। हमारे महाराजा के महल में कोतवाल की भाँग घोटता है और उसकी दाढ़ी भी सहला देता है।

पाँचू — सच कह रहा है ?

ऊधो — अरे ! वास्तव में सच। तू क्या झूठ समझ रहा है। गाजन मेरे मामा के लड़के का साढ़ू है।

पाँचू — ऊधो। यह बता, तूने भी कभी अंगोछे को देखा है ?

ऊधो — हां, देखा क्यों नहीं है। हट्टू गंज के सूत का डेढ़ गज का टुकड़ा। चंपाई रंग का पोत और लाल किनारा। वैसा की वैसा ही कपड़ा।

पांचू — क्या बोलता है भाई ? वृक्ष से कैसे टपका ?

ऊधो — यही तो अचरज की बात है ! सब बाबा की कृपा है ।

पांचू — चलो भाई, चलो । बिरछा बाबा की तलाश की जाय । लेकिन उन्हें खोजेंगे कहाँ ?

ऊधो — यही तो समस्या है । आज तक उन्हें किसी ने भी नहीं देखा । एक अवसर भी आया तो भेकू की आंखें ही मुंद गईं ।

पांचू — फिर उपाय क्या है ?

ऊधो — मैंने तो बहुत तलाश किया । बाजार-गली में जब कोई कहीं मिला तो मैंने हाथ जोड़कर विनती की—'दया करके यह बता दीजिये कि बिरछा बाबा आप ही तो नहीं हैं ? सुनने के साथ वे लोग मुझे पीटने को दौड़ते हैं । एक आदमी ने आवेश में मेरे सिर पर हुक्के की नली फेंक दी ।

गोबरा — फेंके भले ही । लेकिन हम भी पीछा नहीं छोड़ने के । खोजकर ही दम लेंगे ।

पांचू — भेकू सरदार कहता है कि वृक्ष पर चढ़ कर ही बिरछा बाबा को पहचाना जा सकता है ।

जब वृक्ष के तले होते हैं तो बाबा को पहचानना बहुत मुश्किल है।

ऊधो — वृक्ष-वृक्ष पर चढ़ कर बाबा को कब तक खोजते फिरेंगे। मुझे एक मार्ग दिखाई दिया है। मेरे यहाँ वृक्ष पर आमड़ा बहुत फला है। मैं जिस किसी को देखता हूं, उसी से कहता हूँ कि बाबा, आमड़ा तोड़कर ले जाओ। वृक्ष प्रायः सूना हो गया। शाखाए भी सारी ही टूट चुकी हैं।

पाँचू — यह ठीक है। किन्तु अब अधिक देर करना उचित नहीं है। हमें वहां चलना चाहिए। भाग्य ने साथ दिया तो बाबा के दर्शन भी अवश्य होंगे। एक दफा पूरे जोर के साथ आवाज देना—"बिरछा बाबा! अरे बिरछा बाबा! कृपालु बाबा! जंगल में कहीं भी छिपे हुए हो एक दफा हम अभागों को भी दर्शन दे दो!"

गोबरा — भाई अब बाबा की कृपा हो गई! शायद दया हो गई।

पाँचू — कहाँ है रे!

गोबरा — उस ओर देख, हर्फ खेड़ी के वृक्ष पर।

पाँचू (पेड़ की ओर देखते हुए) हर्फखेड़ी पर क्या है ? मुझे तो वहाँ कुछ भी नहीं नजर आ रहा है ?

गोबरा उस ओर देख ! पेड़ पर क्या लटक रहा है।

पाँचू क्या लटक रहा है ? वह, वह तो पूंछ है।

ऊधो तुम्हारी मति को क्या हो गया ? वह बिरछा बाबा की नहीं, हनुमान की पूंछ है। देख नहीं रहा है, किस तरह मुंह बना रहा है ?

गोबरा ओह ! भयंकर कलजुग आ गया। तुम समझते क्यों नहीं ? बाबा ने हम सभी को भ्रम में डालने के लिए इस भुलावे को पैदा किया है।

पाँचू बिरछा बाबा हमें भटका नहीं सकते। इस तरह काला मुख दिखाकर हमें भ्रमित नहीं कर सकते। बाबा ! कितना ही मुंह बनालो ? हम भी आज भुलावे में आने वाले नहीं। आज तो हम भी तुम्हारी इस पूंछ की शरण में हैं।

गोबरा (उस ओर देखते हुए) अरे ! बाबा तो

लम्बी-लम्वी छलांगें मारते हुए दूर भाग रहे हैं ।

पांचू — अब भाग कर कहां जायेंगे ? हम भक्त हैं और भक्ति की दौड़ के सामने बाबा कहां तक भाग सकेंगे ? हम दौड़कर अभी पहुंच जायेंगे ।

गोबरा — देखो, कैंथ की फुनजी पर बैठ गये ।

ऊधो — (तीव्र स्वर में) पांचू ! तू कैंथ पर चढ़ जा

पांचू — ऊधो ! तू क्यों नहीं चढ़ जाता है ?

ऊधो — अरे तू ही चढ़ !

पांचू — बाबा ! हम इतनी ऊंचाई पर चढ़ नहीं सकते ! आप ही दया करके नीचे उतर आईये ।

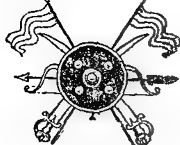
ऊधो — हे विरछा बाबा ! हमें यही आशीर्वाद दो कि आपकी शुभ पूंछ को अपने गले में लपेट कर जिन्दगी की आखिरी घड़ियों में आंखे बन्द कर लूं ।

अरे मंदबुद्धियों ! तुम हंस पाये ?

नहीं ।

जो आदमी बिना विचारे हर बात पर विश्वास करता हो, उसे हसना सरल काम नहीं है। भय यही है कि पूप्पू दीदी मुझे भी विरछा बाबा को खोजने के लिए भेज नहीं दें ।

उसका चेहरा देखने पर ऐसा ही भान होता है। उसका दिल किसी न किसी चीज से हमेशा उलझा रहता है। इस दफा उसका मन बिरछा बाबा से उलझा हुआ है।
कल देखूंगा कि विश्वास किए बिना भी उसे आनन्द आता है या नहीं ?
कुछ समय बाद ही पूपू दीदो ने आकर कहा–"अच्छा दादाजी ! तुम मिल लेते तो बिरछा बाबा से क्या कामना करते ?
मैंने कहा–तुम्हारे लिए एक ऐसी लेखनी चाहता जिससे लिखने पर अंकगणित के सवाल हल करने में कभी गलती नहीं होती। वह तालियां बजाती हुई कहने लगी—ओह ! तब तो आनन्द ही आ जाता।
इस दफा अंकगणित विषय में पूपू ने सौ में से साढ़े तेरह अंक पाए हैं।



मुकुट

पात्र–परिचय

ईसाखाँ : त्रिपुरा के सेनापति
राजधर : त्रिपुरा का छोटा राजकुमार
इन्द्रकुमार : दूसरा राजकुमार
चन्द्रमाणिक्य : युवराज
प्रताप : राजधर का मित्र
धुरन्धर : राजकुमार का सहयोगी
अराकानराज : दूसरे देश का राजा
दूत, सैनिक आदि अन्य पात्र

प्रथम अंक

पहला दृश्य

(त्रिपुरा राज्य के सेनापति का कक्ष। कक्ष में त्रिपुरा के छोटे राजकुमार राजधर और

ईसाखां ग्रतिया रहे हैं। ईसाखां शस्त्रों की सफाई मे व्यस्त दिखाई देते हैं।)

राजधर देखिए, सेनापति ! मैं ग्रापसे कई दफा कह चुका हूँ, मेरा नाम धरके मुझे नहीं बुलाया कीजिए !

ईसाखाँ यह बतादो कि फिर क्या धरके बुलाया करूँ ? चोटी धरके ग्रथवा कान धरके ?

राजधर मैं साफ कह देता हूँ कि मेरी इज्जत नहीं करोगे तो मैं भी तुम्हारी इज्जत नहीं करने वाला हूँ।

ईसाखाँ मेरी प्रतिष्ठा की रक्षा का दायित्व तुम्हारे ग्रधिकार में होता तो मैं उसे कभी का बेच ग्राता। मैं खुद ही ग्रपनी इज्जत की रक्षा कर लूँगा।

राजधर इसी कारण से कहता हूँ कि यदि उसकी सुरक्षा करनी है तो मुझे नाम से कभी न बुलाया करो !

ईसाखाँ बहुत ठीक।

राजधर जी हाँ।

ईसाखाँ (हंसने का ग्रभियन करता हुग्रा। हां, हां, हां ! यह कहो, महाराज को किस नाम से

संबोधित किया जायेगा ? जनाब, हुजूर या शहशाह ?

राजधर — मैं आपका शिष्य जरूर हूं, लेकिन् यह क्यों नहीं ध्यान रखते कि मैं राजकुमार भी हूं।

ईसाखां — आसानी से नहीं भूल पाता। तुम्हीं ने यह याद रखना दुश्वार कर डाला है कि तुम राजकुमार भी हो !

राजधर — ऐसा महसूस हो रहा है कि तुम भी मुझे याद नहीं रखने दोगे कि तुम मेरे गुरु हो !

ईसाखां — बस ! रहने दो ! चुप !

(दूसरे राजकुमार इन्द्रकुमार का ईसाखां के कक्ष में आना)

इन्द्रकुमार — खां साहेब ! क्या समस्या है ?

ईसाखां — बड़ी अचरज की बात है। तुम सभी राज-कुमारों में यह छोटा राजकुमार है न ? इन्हें शहंशाह या जहांपनाह के नाम से न बुलाया जाय तो इनकी इज्जत नहीं रहती है। इन्हें प्रतिष्ठा की बड़ी फिक्र है।

इन्द्रकुमार — क्या फरमा रहे हैं ? सच !

(हंसने का अभिनय करता है)

राजधर — भैया ! खामोश रहो !

इन्द्रकुमार तुम्हें किस नाम से बुलाना होगा ? जहां-पनाह ! (हंसने के अभिनय के साथ) शहंशाह ?

राजधर मैं कह रहा हूं न, तुम चुप रहो।

इन्द्रकुमार हुजूर ! खामोश रहना बहुत मुश्किल है। जनाब ! हंसते हंसते पेट में बल पड़ते जा रहे हैं।

राजधर तुम पूरे ना-समझ हो !

इन्द्रकुमार तनिक शीतल हो लो मेरे भाई ! तुम्हारी समझदारी तुम्हारे पास ही संभाल कर रखो। मुझे उसका कोई लालच नहीं है।

ईसाखां इनकी समझदारी आजकल सीमा लांघ कर बढ़ रही है।

इन्द्रकुमार अब तो पार पाना या पहुंचना भी मुश्किल हो गया है। सीढ़ी लगाकर ही पहुंचना होगा। (नौकर-चाकरों के साथ महाराजाधिराज अमर माणिक्य का युवराज चन्द्र माणिक्य के साथ प्रवेश करना)

राजधर महाराज से मुझे कुछ अपील करनी है।

महाराज क्या हुआ राजकुमार ?

राजधर ईसाखां अनेक दफा इन्कार करने के बाद भी

मेरी बेइज्जती करते हैं। महाराज को इस शिकायत पर अपना इरादा जाहिर करना होगा।

ईसाखां किसी ने भी बेइज्जती नहीं की। राजकुमार अपनी बेइज्जती तुम अपने ही हाथों कराते हो। यहाँ और भी राजकुमार हैं। वे भी यह नहीं भूलते कि मैं उनका उस्ताद हूं, मैं खुद भी नहीं भूलता हूँ कि वे मेरे शागिर्द हैं। इसीलिये इज्जत-बेइज्जती का कोई प्रश्न ही नहीं खड़ा होता है।

महाराज सेनापति! अब हमारे राजकुमार बालिग हो चुके हैं। अब उनकी प्रतिष्ठा और सम्मान की रक्षा हमें करनी ही होगी।

ईसाखाँ महाराज! जिस दिन आपने भी मुझ से युद्ध विद्या की शिक्षा ग्रहण की थी, उस दिन से मैंने महाराज का सदा सम्मान किया था। मैंने उसी तरह राजकुमारों को मान दिया है। उसी तरह इज्जत की है।

राजधर मैं दूसरे राजकुमारों की चर्चा नहीं कर रहा लेकिन··· ···········

ईसाखाँ खामोश रहो कुमार! मैं आपके पिताजी

से कुछ कह रहा हूं । महाराज ! माफ करें राजघराने का यह छोटा राजकुमार बड़ा होने पर किसी कलमगार की तरह कलम तो चला सकेगा किन्तु हथियार इसके हाथों में शोभित नहीं होंगे ।

(युवराज और इन्द्रकुमार की ओर संकेत करते हुये)

इन्हें देखिए, महाराज ! ये भी राजवंश के कुमार है । हमेशा राजप्रासाद को उजाले से चमकाते रहते हैं ।

महाराज राजधर ! सेनापति ! क्या कह रहे हैं ? अस्त्रविद्या के अभ्यास में अपने गुरु को तुष्ट नहीं कर सके ?

राजधर महाराज ! यह तो मेरी अस्त्रविद्या के अभ्यास का नहीं अपितु तकदीर का दोष है । मेरी अर्ज है कि महाराज खुद ही राजकुमारों को धनुर्विद्या की परीक्षा लें ।

महाराज अति उत्तम । कल हमें खास काम भी नहीं है । कल ही स्पर्धा होगी । राजकुमारों में से जो विजयी होगा, उसे मेरी यह हीरों से जड़ी हुई तलवार इनाम में दी जायेगी ।

दूसरा दृश्य

(राजकुमार हथियार घर के दरवाजे पर)

इन्द्रकुमार प्रताप ! क्या समस्या है ? सहसा हथियार घर के दरवाजे पर मुझे क्यो बुलाया गया है ?

प्रताप मझली बहुरानी मां ने आपको कोई खास समाचार देने के लिए मुझे भिजवाया है। आपके इस हथियार घर में एक सजीव अस्त्र प्रवेश कर गया है इसीलिए यह जरूरी है कि सजीव अस्त्र वायु अस्त्र है, नागपाश है अथवा और कुछ है।

इन्द्रकुमार क्यों प्रलाप कर रहे हो प्रताप ? इस कलि–युग में ऐसी भी कोई बात हुआ करती है ?

प्रताप सतयुग में नहीं हुआ लेकिन् कलियुग में इस प्रकार की घटनाएं सुनने को मिलती हैं। द्वार खोलकर देखिए, सब कुछ समझ में आ जायेगा।

इन्द्रकुमार (कान लगाकर) यह क्या ? वास्तव में किसी प्राणी के कदमों की आहट जैसी सुनाई दे रही है।

(द्वार खुलने के साथ राजकुमार राजधर का निकलना)

कौन ? राजकुमार राजधर ? हो, हो, हो, हो, कोई तुमको गलती से सजीव हथियार कहने लगा था (तेज हंसने का स्वर)

राजधर मझली बहुरानी ने मजाक ही मजाक में मुझे यहां कैद कर रखा था ।

इन्द्रकुमार इस घर में सहज मजाक ! यह मजाक भी भयंकर होता है । लेकिन् यह बताओ कि यहां तुम क्यों आये थे ?

राजधर आज रात्रि शिकार के लिए जाने का विचार था । हथियार लेने के लिए गया तो देखा कि हमारे हथियारों पर जंग लगा हुआ था । कल स्पर्धा है, हथियार साफ कराने के लिए देकर आया हूं, यहां मझली बहुरानी से तुम्हारे कुछ हथियार उधार लेने के लिए आया हूं ।

इन्द्रकुमार अच्छा । मझली बहुरानी ने सम्भवतया हथियार शाला ही तुम्हें उधार के रूप में दे दी है । (हंसने का अभिनय) फिर बाहर क्यों आ गये ? उधार का वक्त पूरा हो गया

क्या ? (पुनः हंसने का अभिनय करता है)

राजधर तुम भी हसना चाहो जितने हंसलो। इस खेल में कभी मेरे भी हसने का अवसर आयेगा। लेकिन् अभी वक्त की इन्तजार है। चलो भाई। आज शिकार पर जाने का अब इरादा नही है।

(वहां से बाहर आता है)

प्रताप छोटे राजकुमार के साथ आपका यह उपहास अच्छा नही है।

इन्द्रकुमार उपहास से क्या भय ? वे भी हमारे साथ उपहास करलें।

प्रताप उनका उपहास इतना सहज नही होगा।

तीसरा दृश्य

(स्पर्धा का मैदान। वहां राजा, राजकुमार गण, सेनापति ईसार्खा, निशानधारी तथा भाट उपस्थित है)

इन्द्रकुमार भैया, तुम्हें विजय प्राप्त करना ही होगा, अन्यथा काम नहीं चलेगा।

युवराज चलेगा नही तो क्या ? मेरे बाण के लक्ष्य भ्रष्ट होने पर भी संसार यथावत् चलता रहेगा और नहीं भी चलेगा तो मैं क्या कर

सकता हूं। मुझे विजय की कोई आशा दिखाई नही देती।

इन्द्रकुमार भाई साहेब! यदि तुम पराजित हुए तो मैं जानकर लक्ष्य भ्रष्ट हो जाऊँगा।

युवराज भाई, नहीं, नहीं, ऐसा नही, करना। ऐसा बचपना नहीं करते। गुरु का नाम रखना होगा?

ईसाखां युवराज! परीक्षा का समय हो चुका है, धनुष उठाओ। स्पर्धा में जुट जाओ, देखना सधे हाथ से तीर चलाना।

(*युवराज द्वारा तीर चलाने का अभिनय*)

च....च....चूक गया।

युवराज ध्यान तो बहुत दिया था गुरुजी, तीर सही निशाने पर लग नहीं सका।

इन्द्रकुमार कदापि सम्भव नहीं। तुम्हारा मन जगा होता तो असम्भव था कि निशाना सही स्थान न लगता। भाई साहेब! तुम उदासीनता के साथ यूँ ही सब कुछ ठुकराते रहते हो, इस बात से मेरा मन बहुत खिन्न होता है।

ईसाखां तुम नहीं जानते, कि तुम्हारे भाई का दिमाग तीर की नोंक पर सीधा नहीं बैठता। इसका

	कारण है कि बुद्धि उतनी सूक्ष्म नहीं है।
इन्द्रकुमार	गुरुजी, आपके वाक्य न्याय के वचन नहीं हैं।
ईसाखाँ	राजधर ! अब तुम निशाना साधो !
राजधर	पहले भैया की लक्ष्य साधना हो जाये।
ईसाखाँ	यह वक्त सवाल-जवाब का नहीं है। मेरी आज्ञा का पालन करो।



(राजधर [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

युवराज — भाई, तुम्हारा बाण बहुत निकट से निकला है। तनिक ध्यान देते तो लक्ष्य भेद कर लिया होता।

राजधर — निशाने पर तीर लगा है। दूरी के कारण आप सभी स्पष्टतः नहीं देख पा रहे हैं। वह देखिए, सही लक्ष्य पर !

युवराज — ऐसा नहीं है भाई। तुम्हारी निगाहों को वहम हो गया है। लक्ष्य विंध नहीं पाया है।

राजधर — आप लोग देखकर भी नहीं देख पा रहे हैं, इसका मुख्य कारण यह है कि मेरी धनुर्विद्या पर आप सभी को ऐतबार नहीं है। जो कुछ भी हो, लक्ष्य तक पहुँचने पर सबूत मिल जायेगा।

(कुमार इन्द्रकुमार द्वारा धनुष उठाने का अभिनय करना)

युवराज — इन्द्रकुमार ! मैं अशक्त हूं, अतः मुझ पर रोष करना तुम्हारे लिए ठीक नहीं है। यदि तुम लक्ष्य नहीं वोध सके तो मेरा हृदय फट जायेगा, इसे पक्का समझना।

(इन्द्रकुमार का तीर चलाने का अभिनय)

राजा (परदे के पीछे) जय हो ! कुमार इन्द्रकुमार की विजय हो ।

(वाद्य ध्वनि)

स्वर—जय, जय !

युवराज इन्द्रकुमार को हृदय से लगाते हैं ।

ईसाखां बेटे ! अल्ला की मेहरबानी से तुम हजारों साल जीओ ! महाराज इन्द्रकुमार ईनाम पाने के हकदार साबित हुए हैं । आप अपने वचन का पालन करेंगे ।

राजधर ऐसा नहीं हो सकता महाराज । ईनाम मुझे प्राप्त होना चाहिये । मेरे ही बाण ने लक्ष्य भेद किया है ।

महाराज कदापि नहीं ।

राजधर सेनापतिजी ! आप स्वयं परीक्षा करलें कि लक्ष्य भेद किसके बाण से हुआ है ?

ईसाखां ठीक है, मैं अभी परीक्षा कर आता हूँ ।

(प्रस्थान, कुछ समय बाद हाथ में बाण लिए सेनापति का पुनः प्रवेश)

(इन्द्रकुमार को तीर दिखाकर) मैं बूढ़ा हो चुका हूँ । आँखें अविश्वास तो नहीं कर रही हैं । ऐसा मालूम होता है कि इस बाण

पर तो राजधर का ही नाम अंकित है)

इन्द्रकुमार (आश्चर्य से) नाम तो राजधर का ही अंकित है ।

महाराज मैं भी देखूं ! यह क्या ? एक ही साथ हम सबने भूल कर दी ।

राजधर इस समय ही नहीं । महाराज ! मेरे प्रति तो हमेशा से ही भूल होती रही है ।

ईसाखां कुछ समझ में नही आ रहा है ।

इन्द्रकुमार मैं जान गया हूं ।

राजधर महाराज ! न्याय कीजिए ।

इन्द्रकुमार (चुपके से) न्याय ! हूं ! तुमको न्याय चाहिए ! यदि ऐसा है तो चूने से मुंह लिपवाना होगा तुम्हें । मैं अपने कुल की शर्म को नहीं खोलूंगा । तुम्हारा न्याय भगवान ही करेंगे ।

ईसाखां क्या बात हुई पुत्र ? मुझे इसमें कोई रहस्य जान पड़ता है । पत्थर कभी जल की सतह पर नही तैर सकता है । बन्दर कभी संगीत नहीं सुना सकते । बेटे ! इन्द्रकुमार ! सही-सही बताओ, यह क्या हुआ ? कहीं तरकश की हेरा-फेरी तो नहीं हो गई ?

राजधर कभी नहीं । तहकीकात करवा लीजिए !

ईसाखाँ यह तो मैं भी देख रहा हूं कि तरकश तो सही है। बेटे इन्द्रकुमार ! सत्य कहो ! इन दिनों तुम्हारे हथियार घर में किसी ने प्रवेश तो नहीं किया ?

इन्द्रकुमार इससे क्या होने वाला है सेनापतिजी ?

ईसाखां बेटे ! सही-सही कहो ! निश्चय ही तुम्हें ज्ञान है कि कोई आदमी तुम्हारी अस्त्रशाला में घुसा और तीर बदल लाया है ।

इन्द्रकुमार आप चुप भी रहिये । उस बात की चर्चा करना उचित नही है ।

ईसाखां तो तुम पराजय स्वीकार करते हो ?

इन्द्रकुमार हां सेनापतिजी ! मैं पराजित हुआ ।

ईसाखां धन्य हो बेटे तुम । तुम वस्तुतः राजकुमार हो । महाराज मेरी एक प्रार्थना है । स्पर्धा तो पूरी हो चुकी है, अब काम की स्पर्धा का इम्तिहान हो जाय । देखा जाय कि काम के करने में आपका कौनसा कुमार इनाम पाता है ।

महाराज सेनापतिजी ! आप क्या कहना चाहते हैं ?

ईसाखां महाराज ! अराकान-राज के साथ लड़ाई

करना चाहते हैं। हमारी फौज भी तैयार हो चुकी है। इस दफा राजकुमारों को इस जंग के मैदान में भेजा जाय।

महाराज सेनापति ! आपने काम की बात कही है। समाचार मिला है कि अराकान का शासन चट गांव से सिवाने तक आ पहुंचा है। उसे मैंने बार-बार सबक सिखाया है लेकिन मूर्ख की शिक्षा यमराज के घर में भेजे बिना पूर्ण नहीं हो पाती। क्या कहते हो कुमार गण ? अपने वंश के चिर काल से चले आ रहे उस दुश्मन के विरुद्ध यात्रा करके क्षत्रिय धर्म की दीक्षा प्राप्त करने के लिए तैयार हो ?

इन्द्रकुमार मैं प्रस्तुत हूं। भाई साहेब भी जायेंगे।

राजधर आप क्या विचार रहे हैं कि मैं इस यात्रा में जाऊंगा ही नहीं ?

महाराज ईसाखां। आप सेनापति बनकर इन सभी कुमारों को दुश्मन पर फतह पाने के लिए ले जाइये। त्रिपुरेश्वरी आप सभी की सहायता करे।

द्वितीय अंक

पहला दृश्य

[राजधर के शिविर में राजधर और धुरन्धर]

धुरन्धर — तुम केवल पांच हजार सैनिक लेकर सभी से अलग रहोगे क्या ?

राजधर — मैंने सेनापति के पास यही प्रस्ताव भिजवाया था।

धुरन्धर — यह तो मैं जानता हूं। उस वक्त मैं वहीं मौजूद था। इस प्रस्ताव पर कितनी कितनी चर्चाएँ हुई हैं ?

राजधर — किस तरह की ?

धुरन्धर — सर्वप्रथम तो इन्द्रकुमार बहुत जोर से हंसने लगे। कहने लगे "राजधर को युद्ध नीति ही ऐसी है कि जग के मैदान में दूर रह कर लड़ाई करना पसन्द करते हैं।"

राजधर — यह तो ठीक ही कहा। युद्ध के मैदान में लड़ाई-भिड़ाई का काम तो मजदूर किया करते हैं। जो युद्ध करने वाला होता है वह तो दूर रहकर ही लड़ाई करता है। यह बताओ, सेनापति ने क्या कहा ?

धुरन्धर — यह तो तुमको पता है ही कि तुम्हारे ऊपर उन्हें कितना ऐतबार है और कैसा है ? तुम पैर

छूने को झुको तो उन्हें यही शक होगा कि तुम उनके जूते चुराने के इरादे से आये हो। ईसाखां ने कहा—इसमें आश्चर्य की क्या बात है? राजधर युद्ध के मैदान से दूर ही रहता आया है, किन्तु वह पाँच हजार सेना भी अपने साथ रखना चाहता है, यह बात मुझे अच्छी लगी।

राजधर युवराज ने कुछ नहीं कहा?

धुरन्धर युवराज में इतनी अक्ल कहां है कि वह किसी पर शक कर सके। औरों की बात तो दूर रही तुम्हारे ऊपर भी उन्हें किसी तरह का शक नहीं होता है।

राजधर मैंने तुमको कितनी दफा टोका कि भाई साहेब के बारे में इस तरह की बातें न किया करो।

धुरन्धर ओह! मैं हर दफा इस बात को भूल जाता हूँ कि युवराज के बारे में तुम्हारे हृदय में कोई मुलायम जगह है। अस्तु! युवराज ने कहा—"आप लोग राजधर के प्रति अन्याय करने जा रहे हैं। उसका प्रस्ताव मुझे अति श्रेष्ठ लगा है। यदि जंग में किसी प्रकार की आफत आई तो वह आपकी सेना सहित हमारी सहायता के लिए तैयार रहेगा, युवराज को

इस प्रार्थना पर ही सेनापति ने तुम्हारा प्रस्ताव स्वीकार किया, अन्यथा उनकी इच्छा न थी। खैर, लेकिन सभी से अलग रहने में तुम्हारा उद्देश्य क्या है? यह मैं स्वयं नहीं जान पाया हूं।"

राजधर — उन लोगों के साथ युद्ध में भाग लेने से मुझे फायदा भी क्या है? विजय हासिल करने पर भी उन्हें ही विजयी कहा जायेगा मुझे नहीं।

धुरन्धर — सम्भव है भूल से तुम्हारा नाम भी लिया जा सकता है किन्तु सभी से अलग रहने के कारण विजय में भी तुम्हें केवल बदनामी ही मिलेगी। यदि पराजित हो गये तो न जाने········ ?

राजधर — मैं विजयी हूंगा। अपनी इस पांच हजार सेना के साथ इस युद्ध को जरूर जीतूंगा।

(दूत प्रवेश करता है)

कहो, जंग के क्या समाचार है?

दूत — दिन भर युद्ध होता रहता है किन्तु अभी तक ये लोग शत्रु का व्यूह नहीं तोड़ सके हैं। सूर्यास्त में अब कोई देर नहीं है। अंधकार

हो जाने पर आज युद्ध तो समाप्त करना ही होगा।

(दूसरा दूत प्रवेश करता है)

राजधर — कौन है ?

दूसरा दूत — मुझे व्योमकेश कहते है। युवराज द्वारा भिजवाया गया हूं। उनके द्वारा आदेश दिये हुए करीब दो प्रहर बीत गये। आपके अपनी सेना सहित जहां रहने की बात पक्की थी, वहां पर आपका कोई ठिकाना न मिलने पर बहुत खोजबीन के पश्चात् यहां आया हूं।

राजधर — युवराज की क्या आज्ञा है ?

दूत — दुश्मन की ताकत हमारे अन्दाजे से बहुत ज्यादा है। घमासान लड़ाई कठिन होती जा रही है। कुमार इन्द्रकुमार ने अपने अश्वबल के साथ दुश्मन की सेना पर उत्तर की ओर से हमला किया था। कुछ ही क्षण और मिल जाते तो वह उधर से दुश्मन की सेना को खदेड़कर बिलकुल नदी के तट तक ला सकते थे।

राजधर — सत्य ! वक्त हाथ लगने पर क्या कर लेते, यह कल्पना करने पर किसी तरह का लाभ नहीं दिखाई देता, लेकिन उन्हें वक्त नहीं मिला। ऐसा क्यों ?

दूत — कुमार दुश्मन की फौज को प्रायः खदेड़ चुके थे कि उसी वक्त समाचार मिला कि युवराज मुसीबत में हैं। युवराज घिर गये थे ईसाखां उस वक्त किसी और दिशा में लड़ाई लड़ रहे थे। उन्हें समाचार मिला तो कहने लगे कि मैं यहां जग जीतने आया हूं, युवराज के प्राणों की रक्षा करने नहीं। मुझे युद्ध जीतना है, और मेरे यहां से दूर हटते ही दुश्मन को मौका मिल जायेगा।

राजधर — तो क्या युवराज………… ?

दूत — ऐसा नहीं, वह मुसीबत टल गई। कुमार अपनी फौज सहित वहां पहुंच गये और युवराज को मुसीबत से निकाल लाये। किन्तु इस झमेले में युद्ध का पासा हमारे विपरीत पड़ गया। आपकी खोज के लिए चारों तरफ अनेक दूत भेजे गये आपका सहयोग न मिलने पर विपदा भी गिर सकती है। अतः आप अधिक विलम्ब न कीजिए !

राजधर — अब देर नहो होगी। जाओ तुम विश्राम करो मैं अभी तैयार होता हूँ।

[दूत निकल जाता है]

[दूसरा दृश्य]

[अराकान राज का सैन्य–शिविर]

[राजधर और अराकानराज खड़े हैं]

अराकान राजकुमार ! मुझे बन्दी बनाने से आपको कोई फायदा नहीं होगा ।

राजधर क्यों नहीं होगा ? इस लड़ाई में आपका लाभ ही सबसे बड़ा लाभ है ।

अराकान इससे कभी लड़ाई खत्म नहीं होगी । मेरा भाई हामचू अभी जिन्दा है । सेना उसे राजा मान लेगी और युद्ध इसी तरह चलता रहेगा ।

राजधर राजन् ! आपको मुक्त कर दूंगा, लेकिन इस तरह मुफ्त में मुक्ति नहीं मिल सकती ।

अराकान यह मैं अच्छी तरह जानता हूं । मुझे कर देना होगा । मैं अपनी हार मान करके संधि-पत्र लिख देने को तैयार हूं ।

राजधर केवल संधिपत्र से क्या होगा राजन् ? आपकी हार मानने की कोई निशानी तो जरूर होनी चाहिए ।

अराकान आपको पांच सौ बर्मी घोड़े और तीन हाथी उपहार में दूंगा ।

राजधर यह उपहार मुझे नहीं चाहिए । राजन् ! अपने सिर का मुकुट दे दीजिए ।

अराकान मुकुट देने से तो प्राण देना उचित होगा ।

राजधर प्राण देकर भी मुकुट की रक्षा करने से रहे । बेकार ही में प्राण भी दे देंगे ।

अराकान तो फिर मुकुट ही ले लें । लेकिन् यह याद

रखे, इस मुकुट के साथ आप अराकान से लम्बी दुश्मनी मोल ले रहे हैं। जब तक यह मुकुट हम प्राप्त नहीं कर लेंगे तब तक मेरे राजकुल को चैन नहीं मिलेगा।

राजधर यह राजवंश की सी बात हुई। हम भी चैन से नहीं बैठना चाहते। हम भी क्षत्रिय हैं। अस्तु, एक बात और भी है, लड़ाई समाप्त करने का आदेश शीघ्र ही अपने सेनापति के पास भिजवादें। इस घड़ी उस ओर लड़ाई की तैयारी हो रही है।

अराकान आदेश लेकर दूत अभी जा रहा है।

राजधर आइए, संधिपत्र लिखने का प्रबन्ध किया जाय।

तीसरा दृश्य

[युद्ध के मैदान में युवराज और इन्द्रकुमार]

युवराज आज युद्ध के लक्षण अच्छे नहीं दिखाई दे रहे। हमारे सिपाही कल की घटना के कारण आज भी हृदय में आशंका भरे हुए हैं। वे साहस के साथ नहीं लड़ रहे। सेनापति ईसाखां किस ओर हैं?

इन्द्रकुमार उधर देखिए, पूर्व की ओर उनकी पताका दिखाई दे रही है।

युवराज भाई, आज तुम मेरे साथ-साथ क्यों आ रहे हो? तुम्हें तो उत्तर की ओर जाना था।

ईन्द्रकुमार मैं आपके साथ हो अच्छा हूं।

युवराज कुमार! आज तुम अपने भाई की अविवेकिता से बचाने के लिए साथ-साथ चल रहे हो! तुम्हारे लिए यह उचित नहीं है कि सेनापतिजी को पुनः अवसर मिले और मेरी बुद्धि की कमजोरी का बखान करें। भाई! मेरी नादानी की भी एक सीमा तो है ही। विश्वास करो आज मैं सावधानी के साथ आगे बढ़ूंगा। उधर देखो, वह क्या? यह तो हमारी ही फौजें पीछे हटती हुई दिखाई दे रही हैं। पीठ मोड़ कर भागने को तैयार है। कुमार! तुम्हारे अतिरिक्त और कोई भी उसे रोक नहीं सकेगा। भाई! अब देर न करो। मेरे लिए भयभीत होने की जरूरत नहीं है। लेकिन् यह क्या? अरे! यह क्या?

इन्द्रकुमार सत्य? यह क्या? दुश्मन ने सहसा युद्ध बन्द क्यों कर दिया।

(सेनापति ईसाखां का आना)

सेनापतिजी! कोई समाचार मिला है? दुश्मन ने सहसा युद्ध क्यों बन्द कर दिया?

ईसाखां समाचार आया है, अवश्य आया है। राजघर ने अराकानराज को कैद कर लिया है।

इन्द्रकुमार राजधर ने ? नहीं, नहीं ऐसा नहीं हो सकता !

ईसाखां कल सँध्या के बाद हम जिस वक्त युद्ध विराम करके शिविर में लौट रहे थे, उस वक्त राजधर ने चुपचाप अन्धकार में नदी पार कर ली और अराकानराज के शिविर पर अचानक हमला करके उन्हें बन्दी बना लिया। मैंने सहायता के लिए उसे जहां खड़ा किया था, वहां वह मौजूद नहीं था। मैं सेनापति हूं, किन्तु मेरी आज्ञा को वह स्वीकारता ही नही है।

इन्द्रकुमार यह बर्दाश्त करने योग्य नहीं है। इसके लिए उसे सजा मिलनी चाहिए।

ईसाखां इतना ही नहीं। युवराज के रहते हुए उसने अपनी इच्छा के अनुसार सन्धि पत्र लिखवाया है।

इन्द्रकुमार इसके लिए भी दण्ड न देना अन्याय होगा।

ईसाखां युवराज को यह सरल सी बात समझा दीजिए।

[राजधर का प्रवेश करना]

इन्द्रकुमार राजधर ! तुमने कायरता को जता दिया।

राजधर इस युद्ध के मैदान में तुम्हारी तरह पुरुषार्थ का प्रदर्शन करने इतनी दूर नहीं आया हूं।

मैं तो जंग के मैदान में विजय का वरण करने आया था।

इन्द्रकुमार तुमने युद्ध किया है ? और विजय का वरण किया है ? तुमने तो विजय लक्ष्मी का मुख शर्म के मारे लाल कर दिया है।

राजधर सम्भव है भैया ! लेकिन यह शर्म प्रणय की शर्म है। उन्होंने मेरा वरण किया है, इसका यह सबूत रहा !

इन्द्रकुमार यह मुकुट ! किसका है ?

राजधर यह मुकुट मेरा है। यह मेरी जीत का ईनाम है।

इन्द्रकुमार तुम तो मैदान से पलायान कर गये थे, तुम्हें किस बात का ईनाम मिलेगा ? यह मुकुट युवराज धारण करेंगे।

राजधर मैं इसे जीत कर लाया हूं, मैं ही इसे धारण करूँगा।

युवराज राजधर का कथन ठीक है। अपनी विजय की सम्पदा का स्वयं ही भोग करेंगे।

ईसाखां युवराज ! कुमार ने सेनापति के आदेश की अवहेलना की है। रात अंधेरे में गीदड़ की तरह आचरण किया है, और फिर भी ये मुकुट धारण करेंगे ? इन्हें तो टूटी हांडी धारण करके स्वदेश लौट जाना चाहिए।

राजधर	मैं नहीं होता तो आप सभी को टूटी हांडी का टुकड़ा पहिन कर ही देश जाना होता। यह भी विचारिए कि आप इस वक्त कहाँ होते ?
इन्द्रकुमार	हम कहीं भी होते ! किन्तु तुम्हारी तरह भगोड़े नहीं होते।
युवराज	कुमार ! तुम न्याय नहीं कर रहे हो ! सच्चाई कहने में क्या बिगड़ता है। वास्तविकता तो यही है कि राजधर नहीं होता तो आज तुम संकट में घिर गए होते।
इन्द्रकुमार	किसी तरह का संकट न था। राजधर ने सेना को छिपाकर हमें संकट में डालने का यत्न किया था। यदि राजधर न होता तो मैं युद्ध में विजयी हो कर यह मुकुट लेकर आता। राजधर यह मुकुट चुरा कर लाया है। भाई साहब। यह मैं आप ही को पहनाता, स्वयं कभी भी धारण नही करता।
युवराज	(कुमार राजधर की ओर देखते हुए) कुमार ! तुम विजयी हो ! यदि तुम न होते तो इतनी कम सेना के साथ हम न जाने किस मुसीबत में फंस गये होते। यह मुकुट मैं तुम्हीं को पहना रहा हूं।
इन्द्रकुमार	(भर्राये स्वर में) राजधर ने क्षत्रिय-धर्म की अवहेलना की है, अतः आज आपसे वह इनाम

पा रहा है, और मैं प्राण हथेली पर उठाये संकट की घड़ियों में भी युद्ध करता रहा, इसीलिए आपके मुख से प्रशंसा का एक शब्द भी नहीं निकल पा रहा है। आपके मुख से यह भी सुनना पड़ा कि राजधर न होता तो आपकी संकट में कोई रक्षा नहीं कर सकता था। क्यों भाई साहेब? मैं क्या सवेरे से शाम तक आपके सामने खड़ा हो लड़ता नहीं हूं? क्या मैं जंग का मैदान छोड़ कर भाग गया? क्या मैं दुश्मन का व्यूह भेदकर आपकी सहायता के लिए नहीं पहुंचा? यह आपने किस कारण से कहा? कि यदि आपका कृपापात्र राजधर न होता तो आपको इस मुसीबत से कोई नहीं बचा सकता था?

युवराज कुमार! मैं अपनी मुसीबत के बारे में नहीं कह रहा हूँ।

इन्द्रकुमार रहने दीजिए, भाई साहेब! अब अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। राजधर जैसे असामान्य शूर जब सहयोगी हैं तो मुझ जैसे साधारण की आवश्यकता भी क्या है? मैं यहां से चला जाऊँगा।

युवराज कुमार! फिर तुम अपने आपको भूलते जा रहे हो?

इन्द्रकुमार जब मेरी यहाँ आवश्यकता ही नहीं है तो अपमान के साथ रहना उचित भी नहीं है।
(इन्द्रकुमार जाता है)।

ईसाखाँ युवराज ! यह मुकुट किसी को भी देने का आपको अधिकार नहीं है। मैं सेनापति हूं, मैं चाहूँगा उसे दूँगा।
(राजधर के सिर से उतार कर युवराज को मुकुट पहिनाना चाहते हैं)

युवराज (पीछे हटकर) नहीं, नहीं, यह मुकुट मैं धारण नहीं कर सकता।

ईसाखाँ तब इस मुकुट को कोई अन्य भी धारण नहीं कर सकेगा। यह कर्णफूली के जल में जाय
(सेनापति कर्णफूली नदी के जल में मुकुट फेंक देते हैं)

राजधर ने जंग के उसूलों के खिलाफ काम किया है, इसलिए वे सजा के काबिल हैं।

राजधर भाई साहब ! आप गवाह हैं। इस घटना को मैं कभी नहीं भुला सकूँगा।

चौथा दृश्य

(शिविर में राजधर और धुरन्धर)

राजधर धुरन्धर ! कर्ण फूली के जल में मेरा मुकुट

समा गया है, उसी जल में इस विजय को भी डूबा दूंगा।

धुरन्धर अब पराजित होना चाहते हो ?

राजधर हां, मैं पराजय में विजयी दूंगा। इन्द्रकुमार के अह को मिट्टी में रोदे बिना मैं देश नहीं लौटूंगा। मेरे द्वारा की गई विजय को वे स्वीकार नही सकते मुझे भी यही देखना है कि वे अपने बल विक्रम पर किस तरह विजयी होंगे ?

धुरन्धर अधिक निश्चितता ठीक नहीं है। इस दफा इत्तफाक से कुमार विजयी भी हो सकते है। सत्य पर मुंह फुलाने से कोई फायदा नहीं हैं। वास्तव में इन्द्रकुमार ने युद्ध विद्या का अभ्यास किया है।

राजधर ठीक है, यह बहस बाद में होगी। अभी तो तुम एक कार्य करो ! कल प्रातः अराकान राज प्रस्थान कर रहे हैं। संधि में शर्त है कि चटगांव की सरहद से बाहर निकल जाने तक उनके सेनापति मेरे शिविर में नजर कैद रहेंगे। उनका शिविर उखड़ने से पूर्व ही आज रात्रि तुम उनके पास जाओ और उन्हें यह खत

दे आओ ! किसी को सन्देह नहीं होना चाहिये ।

धुरन्धर पत्र में जो लिखा गया है, वह मुझे भी ज्ञात हो सके तो ठीक होगा । इसका लाभ यह होगा कि दो एक बात करने की आवश्यकता हुई तो काम निबटाता ही आऊंगा ।

राजधर मैंने इस पत्र में लिखा है—"मेरा निरादर हुआ है अतः मैंने अपने भाईयों से मुक्ति पाली है । लौटते पांच हजार सिपाहियों को लेकर में घर लौटने के निमित्त कहीं दूर चला जाऊंगा । इन्द्रकुमार भी रूठकर चला गया है । युद्ध की समाप्ति जानकर सिपाही भी लौटने की तैयारी में हैं। इस मौके पर अराकानराज आक्रमण करें तो त्रिपुरावालों की पराजय निश्चित है।"

तीसरा अंक

पहला दृश्य

(युद्ध के मैदान में इन्द्रकुमार और सिपाही)

इन्द्रकुमार कहां है ? भाई साहब कहां हैं ?

सिपाही उनकी तलाश में हूं ।

इन्द्रकुमार और सेनापति ईसाखां ?

सिपाही युवराज अपने हाथों से आज चार बजे ईसाखां को दफना आये । उस मिट्टी में उनका

अपना रक्त भी मिल गया है।

इन्द्रकुमार धिक्कार है। इन्द्रकुमार तुझे धिक्कार है। तुम्हारे मिथ्या अहं को धिक्कार है! धिक्कार है तुम्हारी जिद को, भैया! इस नीच को एक दफा क्षमा मांगने का मौका भी न दोगे? (तीव्र स्वर में) भाई! बोलो, एक क्षण के लिए बोलो! यहां कोई भी नहीं है क्या? जो जहां कहां भी हो, बस उन्हें तलाश में लग जाय। आज तो मुझे अपने भाई साहेब से मिलना ही होगा।

(दूसरे सिपाही का आना)

दूसरा सिपाही कुमार! इधर आईए! उनके दर्शन हो गये हैं।

इन्द्रकुमार कहां है?

दूसरासिपाही कर्णफूली नदी के किनारे वृक्ष के नीचे।

इन्द्रकुमार सच सच कहां, वह..............

दूसरा सिपाहो युवराज जिन्दा है। आपका इन्तजार कर रहे हैं?

दूसरा दृश्य

(चांदनी रात)

(कर्णफूली नदी के किनारे वृक्ष की छाया में युवराज)

युवराज   अरे ! इन शाखाओं को तनिक दूर कर दो। जरा चन्द्रमा के दर्शन कर लूं। कोई नहीं हैं? यह वृक्ष की छाया है अथवा मेरी आंखें धुंधलाने लगी हैं? कर्णफूली का मधुर संगीत अभी भी सुनाई पड़ रहा है, तो क्या भूमि का आखरी विदा संभाषण नदी के कलकल रूप में ही लिखा है? इन्द्रकुमार ! कुमार ! अभी भी तुम्हारा क्रोध शान्त नहीं हुआ? (इन्द्रकुमार का प्रवेश)

इन्द्रकुमार भाई साहेब ?

युवराज   ओह ! जीवन मिल गया मैं जानता था कि तुम अवश्य आओगे। इसलिए इतना विलम्ब होने पर भी श्वांस गिन रहा था। तुम रूठ कर चले गये थे, अतः मैं प्रस्थान न कर सका। रात बहुत हो गई है, अब सो रहा हूं। माता ने गोद बिछा रखी है।

इन्द्रकुमार भाई साहेब ! क्षमा कर दीजिए ! हृदय साफ कर लीजिए।

युवराज   यहां जो कुछ भी था, सब कुछ साफ कर दिया है। इस खून में बस एक ही दुःख रह गया है। महाराज के निकट समाचार भिजवाना है कि मैं पराजित हो गया हूं।

इन्द्रकुमार तुम्हारी हार नहीं, तुम पराजित नहीं, मैं पराजित हो गया हूं। (सिपाई का प्रवेश)

सिपाही कुमार राजधर ने युवराज के चरणों की रज लेने के लिए प्रार्थना की है।

इन्द्रकुमार कभी सम्भव नहीं। किसी दशा में नहीं।

युवराज उसे यहां बुलाओ।

इन्द्रकुमार भाई साहेब! राजधर को········

युवराज फिर भाई········

इन्द्रकुमार नहीं, नहीं, अब और नहीं। अब अधिक रोष नहीं (राजधर का आना और प्रणाम करना)

राजधर मैं गिरा हुआ हूं, नीच हूं यह मुकुट आपके चरणों में रखता हूं। यह आपका ही है।

युवराज अब वक्त नहीं है। इन्द्रकुमार को दे दो।

राजधर भाई साहेब की आज्ञा। यह मुकुट आप लीजिए।

इन्द्रकुमार मैं हारा हुआ हूं। नहीं, यह मुकुट मेरा नहीं है। यह मैंने आप ही को पहनाया। भाई साहेब!

इच्छापूर्ति

सुबलचन्द्र के पुत्र का नाम सुशीलचन्द्र था। जैसा नाम था उसके अनुसार स्वभाव न था। यह जरूरी भी नहीं कि आदमी अपने नाम के अनुरूप ही हो।

सुबलचन्द्र दुबले-पतले शरीर वाले थे और सुशील चन्द्र कभी शान्त नहीं रहते थे। सुशील दिन भर मुहल्ले में कुछ न कुछ परेशानी करता रहता था। उसके पिताजी कभी-कभी उसे सजा देने के लिए उसको पकड़ने के लिए दौड़ते रहते थे। लेकिन पैर में दर्द होने के कारण उसे पकड़ नहीं पाते थे। सुशील हिरण की तरह छलांगे मारता हुआ भाग जाता और हाथ नहीं आता। जब कभी पकड़ में आ जाता तो छुड़ाने का यत्न करता लेकिन कभी-कभी उसकी जमकर पिटाई होती।

शनिवार का दिन था। शनिवार को आधे दिन छुट्टी होती थी लेकिन फिर भी सुशील स्कूल जाना नहीं चाहता था। उस दिन भूगोल का इम्तिहान था, उसके वश की बात न थी। फिर मुहल्ले में वोस परिवार

में आतिशबाजी का कार्यक्रम था। सुशील चाहता था कि दिन भर कार्यक्रम में व्यस्त रहा जाय।

अपने इरादे के अनुसार उसने स्कूल जाने से मना कर दिया और बिस्तर पर लेट गया। उसके पिताजी ने उससे पूछा 'सुशील! आज स्कूल नहीं जाओगे?

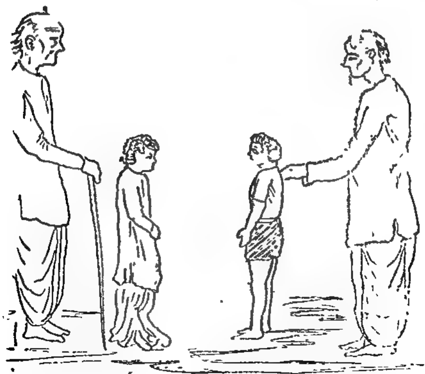
पेट में दर्द हो रहा है, आज स्कूल नहीं जाऊंगा'— सुशील ने धीमे से जवाब दिया।

वह अपने लड़के के बहानों से परिचित थे। पिता ने मन ही मन इरादा किया—'आज इसे सबक सिखाता हूं।' उसने सुशील से कहा—'पेट में दर्द है तब तो आज कहीं भी नहीं जाना है। मुहल्ले में आज आतिशबाजी है, देखने के लिए अकेला हरि ही चला जायेगा। तुम्हारे लिए लेमनजूस ले रखे थे, लेकिन आज नहीं। चुपचाप सो जाओ, अभी पाचक बना लाता हूं।

पिता ने उस कमरे के बाहर सांकल लगा दी और पाचक बनाने में जुट गये। सुशील अजीब मुसीबत में फंस गया था। उसे लेमनजूस बहुत अच्छा लगता था और पाचक के नाम से मितलाई आती थी। आतिशबाजी देखने का इरादा भी चौपट हो गया।

जब सुबलबाबू हाथ में पाचक का कटोरा लेकर कमरे में घुसे तो सुशील ने घबराहट के साथ कहा—'अब दर्द नहीं है, मैं स्कूल जा रहा हूं।

सुबलबाबू ने कहा—नहीं, नहीं, अब शाला जाने की आवश्यकता नहीं है। थोड़ा सा पाचक पीकर लेट जाओ सारा दर्द दूर हो जायगा।' पिता ने धमकाकर उसे पाचक पिला दिया और कमरे के बाहर ताला लगा दिया। सुशील पलग पर पड़ा आंसू बहाता रहा और विचारता रहा कि यदि बापू जितना बड़ा हो जाऊँ तो मुझे कोई टोकने वाला नहीं होगा काश ! कल ही इतना बड़ा हो जाऊँ तो मजा आ जायं।



सुवलबाबू भी अकेले में विचार रहे थे कि—मेरे माता-पिता मुझे बहुत चाहते थे लेकिन मैं पढ़ नहीं सका। काश ! फिर से बचपन लौट आये तो मैं एक पल भी बर्बाद नहीं करूं। मन लगाकर पढ़ाई करूं।

जब वे बाप-बेटे मन ही मन विचार रहे थे उस वक्त इच्छा रानी उधर से गुजर रही थी। उन दोनों के मन की बातें उसने जानली और इरादा किया—'कुछ दिन के लिए बाप-बेटे की इच्छा पूरी कर दी जाय।' अपने इरादे के अनुसार वह सुवलबाबू के पास पहुंची और कहने लगी—'तुम कल से अपने पुत्र की उम्र वाले हो जाओगे।'

इसी तरह सुशील से कहा—'तुम्हारी भी इच्छा पूरी होगी कल से तुम अपने पिता की उम्र वाले हो जाओगे।'

इच्छारानी की बात सुनकर पिता-पुत्र बहुत ही खुश हो गये।

उम्र के बोझ से थके हुए सुवलचन्द्र रात्रि में सो नहीं पाते थे। सवेरा होने से कुछ समय पूर्व ही उन्हें नींद आती थी। किन्तु इच्छारानी के वरदान के बाद उस दिन सवेरे-सवेरे बच्चों की तरह उछलते-कूदते बिस्तर से उठे। उन्होंने देखा कि वे बहुत छोटे से हो गये, मुंह में फिर से

दांतों ने जन्म ले लिया। दाड़ी-मूँछ के बाल साफ हो गये। बुढ़ापे की कोई निशानी नहीं बची थी। रात्रि में जो कपड़े पहिनकर सोये थे, सुबह वे इतने ढ़ीले हो गये कि आस्तीने जमीं पर लटकने लगी। कुरते का गला छाती से सरक कर पेट तक लटक गया और धोती का छोर इतना भूल गया कि चलने में भी कठिनाई होने लगी।

उधर सुशीलचन्द्र में भी परिवर्तन आ गया। उसकी आदत थी कि सवेरे-सवेरे-उठकर उपद्रव किया करते थे किन्तु आज तो न नींद खुल पा रही थी और न बिस्तर से उठने को जी हो रहा था। अपने पिता के उधम फैल से नीद में दखल पड़ रही थी। उसने उठते ही देखा कि रात को जो कपड़े पहिन कर सोये–वे सिकुड़ गये। शरीर से चिपक कर फटे जा रहे थे। शरीर सहसा बढ़ गया, मुंह पर अचानक दाढ़ी-मुंछ आ गई। सिर पर से बाल गायब, चिकनी सी टाट दिखाई देने लगी। उस दिन बिस्तर से उठने का नाम ही नही ले रहा था। करवट पर करवटें बदली जा रही थी, कई दफा ऊवासियाँ ले चुका था फिर भी आलस ने घेर रखा था। अपने पिता के उपद्रव से खिन्न हो खींजता हुआ बिस्तर से उठा।

इच्छारानी के-वरदान के कारण पिता-पुत्र की

इच्छा पूरी होने पर दोनों ही मुसीबत में पड़ गये। सुशीलचन्द्र चाहते थे कि वह अपने पिता की तरह बड़ा और आजाद होने पर अपनी इच्छा के अनुसार चाहेगा वैसे ही करेगा, । वृक्षों पर चढ़कर फल खायेगा, पानी में कूदा करेगा, चिड़ियों के बच्चे उतारा करेगा, सारे देश मे घूमता रहेगा जब चाहेगा तब घर आया जाया करेगा, जो चाहेगा जो खायेगा । कोई उसे रोकने वाला नहीं होगा । लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि उस दिन सुबह-सुबह उठकर वृक्ष पर चढ़ने की इच्छा ही नहीं हुई । जलकुम्भी वाले तालाब को देखकर उसे आशंका हुई कि यदि इसमें छलांग लगाऊंगा तो बुखार चढ़ जाएगा । वह चुपचाप चटाई बिछाकर सो गया और पड़ा-पड़ा अनेक तरह की कल्पनाएँ करने लगा ।

उसने निश्चय किया कि सहसा खेल-कूद छोड़ देना अच्छा नहीं होगा । थोड़ा खेल-कूद लेने की कोशिश में आपत्ति भी क्या है ? यह विचार कर वह पास वाले एक पेड़ पर चढ़ने के लिए अनेक तरह से यत्न करने लगा । कल तक जिस वृक्ष पर वह गिलहरी की तरह आसानी से चढ़ जाया करता था, आज बुढ़ापे से घिरा शरीर उस पर चढ़ने की हिम्मत ही नहीं जुटा पा रहा था । नीचे की एक शाखा पकड़ कर चढ़ना चाहा तो उसकी देह के भार से

वह शाखा ही टूट कर जमीं पर गिर गई और वह भी नीचे गिर गया। पास के मार्ग में गुजर रहें यात्रियों ने उस वृद्ध को बालक की तरह हरकतें करते हुए देखकर उसका मखौल उड़ाया और वे सभी जोर-जोर से हंसने लगे। सुशीलचन्द्र का शर्म के मारे मुंह लटक गया और हताश हो वह फिर चटाई पर जा बैठा। उसने अपने नौकर से कहा–'अरे? बाजार से एक रुपए का लेमनजूस ले आ।" लेमनजूस के लिए सुशील की बहुत इच्छा रहती थी। विद्यालय के निकट ही एक दुकान थी। उस दुकान में वह प्रतिदिन रंग-बिरगे लेमनजूस देखता था। वहां दुकानदार अच्छी तरह सजा कर रखता था। अपने पिता स प्रतिदिन जो हाथ खर्चा मिलता था, उससे लेमनजूस ही खरीदकर खाया करता था। वह कल्पना किया करता था, कि उसके पास जब अपने पिता की तरह पैसे हो जायेगे तो वह खूब सारी लेमनजूस खरीदकर अपनी जेबें भर लेगा और खाता रहेगा। लेकिन आज जब नौकर एक रुपये की ढेर सारी लेमनजूस लेकर आया तो वह एक भी न उठा सका। उसने मुश्किल से एक लेमनजूस उठाकर अपने मुंह में रखा। दांतो से रहित मुंह में चूसना चाहा लेकिन उसे अच्छा नहीं लगा। एक बार विचार किया कि ढेर सारे लेमनजूस अपने बालक पिताजी को दे

दें। तभी ख्याल आया कि नहीं, कोई आवश्यकता नहीं है। इतने ढेर सारे लेमनजूस चूसकर वे रोगी हो जायेंगे।

कल सांझ तक उसके जो साथी कवड्डी खेला करते थे, वे उसकी तलाश में आये तो वृद्ध-शरीर वाले सुशील चन्द्र को देख कर सभी भाग गये। सुशील ने विचार किया था कि पिता की तरह स्वतन्त्र हो जाने पर वह अपने साथियों के साथ दिन भर कवड्डी खेला करेगा किन्तु आज राखाल, गोपाल, अक्षय, निवारण, भरत और नन्द को अपनी ओर आते देख कर उसे मन ही मन कुण्ठा हुई। वह विचार करने लगा कि क्या मजे से चुपचाप बैठा हुआ था, अब ये उसके साथी न जाने कहां से आ टपके और उपद्रव करने लगे?

बता चुका हूँ कि पिता यानी सुबलचन्द्र प्रतिदिन ओसारे में चटाई बिछाकर बैठे-बैठे विचारा करते थे कि 'बचपन में सारा समय खेल-कूद में नष्ट कर दिया था, किंतु अब यदि फिर से बचपन लौट आये तो सारा दिन शांति के साथ दरवाजा बंद करके घर के भीतर बैठकर किताबें पढ़ता रहूंगा और पाठ याद करता रहूँगा। इतना ही नहीं सांझ पहर अपनी दादी से कहानियां सुनना भी बन्द कर दूंगा और दीपक जलाकर रात्रि में दस ग्यारह बजे तक अध्ययन करता रहूंगा' लेकिन फिर से बचपन लौट आने

पर सुबलचन्द्र फिर से स्कूल जाने को तैयार न थे ।

सुशील अपने पिता की इस हरकत से दुःखी था, वह कुढ़-कुढ़कर झिड़कता-बापू, विद्यालय क्यों नहीं जाओगे ?

सुबल सिर खुजला कर मुंह लटका लेते और चुपचाप कहते—"आज मेरे पेट में दर्द हो रहा है, इसलिए विद्यालय नहीं जा सकूंगा ।"

सुशील खोज कर कहता—"जा क्यों नहीं सकोगे?" विद्यालय जाते वक्त मुझे भी ऐसी शिकायतें हुआ करती थी, इसे मैं अच्छी तरह जानता हूं ।

वास्तव में सुशील ऐसे ही बहाने बनाकर विद्यालय से अनुपस्थित रहा करता था और वह भी इतने हाल की बात थी कि उसे छलपाना उसके पिता के बस की बात न थी । विद्यालय का अवकाश होने पर सुबल घर आकर खूब दौड़ भाग करके खेल-खूद के लिए विकल हो उठता किन्तु ठीक तभी उनका पुत्र सुशील चन्द्र आंखों पर चश्मा चढ़ाये रामायण के सस्वर पाठों में तल्लीन होता और अपने पिता सुबल की धमाचौकड़ी से उसके पाठ में व्यवधान होता था । वह सुबल को बलात् पकड़ करके अपने निकट विठा लेता और हाथ में पाटी थमाकर कहता कि "पिताजी ! लीजिए, गणित का अभ्यास कीजिए । अंक-

गणित के ऐसे कठिन कठिन सवाल चुनकर देता कि एक एक सवाल में बेचारे पिता को एक-एक घण्टा लग जाता था। संध्या के वक्त वृद्ध सुशील के कक्ष में बहुत से वृद्ध आ बैठते और शतरंज खेला करते थे। उस वक्त सुबल को चुप व शांत रखने के लिए सुशील ने एक ट्यूटर की व्यवस्था कर दी थी। मास्टर साहब रात्रि में दस बजे तक पढ़ाया करते थे।

सुशील भोजनादि के मामले में कठोरता से नियमों का पालन किया करता था। उसके पिताजी जब वृद्ध थे तो उनकी पाचन शक्ति ठीक नहीं थी। तनिक भी ज्यादा खा लेते तो धुऐं की डकार आने लगती थी। सुशील इस बात से अच्छी तरह परिचित था किंतु सहसा छोटे हो जाने पर अब उनकी भूख इतनी बढ़ गयी थी कि वे सब कुछ हजम कर लेते थे। सुशील अपने पिता को खाने के लिए इतना कम देता था कि भूख के मारे वे परेशान रहते थे। आखिर में सूखकर कांटे हो गये और हड्डियां ही हड्डियां दिखाई देने लगी। सुशील ने विचार किया कि उसके पिता को कोई खराब बीमारी लग गई है अतः वह उन्हें तरह-तरह की औषधियां दिलाने लगा।

वृद्ध सुशील की दशा भी दयनीय थी। वह अपने पिछले अभ्यास के अनुसार जो भी करता वही उसके लिए

सह्य न था। पहले वह ग्राम में कहीं भी नाच तमाशे की खबर पाता तो घर से भागकर वहां जा पहुंचता और इस बात की कोई चिन्ता नहीं करता कि तेज सर्दी पड़ रही है अथवा अत्यधिक वर्षा हो रही है। अब वृद्ध सुशील वैसा करता तो सर्दी लग जाती, खांसी होने लगती, शरीर टूटने लगता, सिर दुःखता और तीन-तीन सप्ताह तक बिस्तर पर पड़े रहता। वह हमेशा तालाब में स्नान करके आता था। यदि अब वह ऐसा करे तो शरीर जकड़ जाता, गांठें सूज जाती और चिकित्सा में छः-छः महीने लग जाते। अब हर तीसरे दिन स्नान करता था। गरम पानी से नहाना पड़ता था।

पूर्व अभ्यास के कारण वह तख्त से उछल कर उतरता तो हड्डियां बजने लग जाती। मुंह में पान दबाने के बाद ही उसे ख्याल आता कि ओह? उसके मुंह में दांत तो हैं ही नहीं, पान चबाना! बहुत मुश्किल है। भूलकर कंघी करने लगता, तब कहीं उसे ध्यान आता कि उसका सिर तो सफाचट है। कभी-कभी वह अचानक भूल जाता कि मैं अपने पिता की उम्र का बूढ़ा हो गया हूं और फिर पहले की तरह नटखटपना करने लगता, मुहल्ले की बूढ़ी आन्टी बुआ का कलस पत्थर मारकर फोड़ देता और वह बेचारी पानी से तरबतर हो जाती।

बूढ़े का यह बचकाना देखकर लोग उसे फटकारते और मारने दौड़ते। वह भी शरम के मारे इतना गड़ जाता कि मुंह छिपाने को कही जगह तलाश करने पर भी नही मिलती।

सुबलचन्द्र भी यदा-कदा भूल जाते कि मैं बचपन में लौट आया हूं स्वय को पूर्व की तरह वृद्ध जानकर वह वृद्धों के ताश-चौपड़ के खेल देखने लगता और निकट बैठकर वृद्धों की तरह बतियाने लगता। इस पर सभी उसे फटकारते हुए कहते कि—जा' जा, बालकों के साथ खेला-कूद कर ? और वे लोग उसका कान पकड़कर उसे निकाल देते। प्रायः अनचेते क्षणो में सहसा अपनी स्थिति को भूल जाता और अध्यापक से कह बंठता—"जरा जर्दा तो खिलाना।" इस हरकत के कारण अध्यापक उसे कक्षा में बेंच पर एक टांग से खड़े रहने का हुक्म फरमा देते।

कभी-कभी नाई से ही सवाल करने लगता—"अरे बेजा ! कितने दिन बीत गय, तू मरी दाढ़ी बनान क्यों नहीं आया रे ?"

नाई विचारने लगता कि इस बच्चे ने मखौल करना सीख लिया है। इसकी ठिठोली करने की आदत पड़ गई है। वह भी जवाब में कह देता—"बस अभी आया कोई दसेक साल में।"

वह कभी-कभी अपनी आदत के कारण अपने पुत्र सुशील को डांट फटकारते हुए पीट भी देता। सुशील अपने बालक पिता का व्यवहार देखकर बहुत खिन्न हो जाता और कहता–'पढ़ लिखकर यह तुम्हारी बुद्धि व्यवहार कर रही है। छोटे से बच्चे होकर भी तुम वृद्ध आदमी पर हाथ उठाते हो ! छी !" और इस तरह की बात-बे-बात में उसे सभी आदमी मारते पीटते। कोई घूंसे लगाता कोई थप्पड़ लगाता तो कोई गालियां बकता।

सुबलचन्द्र ने परेशान होकर एक चित्तता के साथ प्रार्थना करनी आरम्भ की–ओह ! यदि मैं अपने पुत्र सुशीलचन्द्र की तरह वृद्ध और स्वाधीन हो जाता तो इस मुसीबत से पिण्ड छूट जाता।

दूसरी ओर सुशीलचन्द्र प्रतिदिन हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा–हे भगवान ! मुझे मेरे पिता की तरह छोटा बच्चा बना दो। मैं अपनी इच्छा के अनुसार खेल खेलता रहूं। मेरे पिता इतने वाचाल और ऊधमी हो गये हैं कि उन पर काबू पाना मेरे वश की बात नहीं रही है। इसी फिक्र के कारण मुझे पल भर भी चैन नहीं मिल पा रहा है।

उन दोनों के मन की बातें सुनकर इच्छारानी आई और कहने लगी–'क्यों, तुम दोनों की इच्छा पूरी हो गई ?"

दोनों पिता पुत्र जमीन पर लेटकर प्रणाम करते हुए कातर स्वर में प्रार्थना करने लगे–'दुहाई इच्छारानी ठकुरानी की। पूरी हो गई हमारी तमन्नाए। हम पहले जिस रूप में थे, हमें फिर से वही लौटा दो!

इच्छारानी ने उन दोनों से कहा–ठीक है, कल प्रातः उठने पर तुम दोनों अपना पहला रुप पा लोगे।

दूसरे दिन प्रातः सुबलचन्द्र पहले जैसे वृद्ध होकर उठे और सुशील भी पहले जैसा बच्चा होकर उठा। दोनों को ऐसा महसूस हुआ कि मानो किसी स्वप्न से जगे हों। सुबलचन्द्र ने भारी स्वर में कहा–सुशील व्याकरण याद नहीं करोगे?

सुशीलचन्द्र ने सिर खुजलाते हुए कहा–बापू मेरी पुस्तक गुम हो गई है।

डाक्टर



गुप्ता मुहल्ले में रहने वाले विश्वम्भर बाबू पालकी में बैठकर सप्तग्राम की यात्रा कर रहे हैं। फागुन का मास है किन्तु अभी भी सर्दी बहुत तेज गिर रही है कुछ दिन

पूर्व ही पूरे हफ्ते वर्षा की झड़ी लगी रही। विश्वम्भर बाबू ने एक मोटा कम्बल अपनी देह पर डाल रखा है। पालकी के साथ उनका सेवक शम्भू भी चल रहा है। उसके हाथ में एक मोटी लकड़ी हैं। पालकी के ऊपर दवाइयों की पेटी है, उसे मोटी डोरी से कसकर बांध रखा गया है।



उनका नौकर शम्भू बहुत तगड़ा है। इतना ताकतवर है कि उसे देखकर सभी दंग रह जाते है ? एक दफा की बात है कि कुम्भीरा के वन में उसे रीछ ने दबोच

लिया था। उसके हाथ में बन्दूक नहीं थी। उस समय उसके पास कोरी लाठी थी लेकिन वह घबराया नहीं, लाठी लेकर ही रीछ का सामना करने लगा। दोनों में भयंकर युद्ध हुआ। शम्भू की लाठी के प्रहार से रीछ की राढ़ की हड्डी टूट गई। उस मार के मारे उसमें उठने तक का दम न रहा।

इसी तरह की एक घटना और भी है। शम्भू अपने विश्वम्भर बाबू के साथ स्वर्णगंज गया था। वहां पद्मा नदी के तट पर भोजन बनाने की नौबत आ पड़ी। गर्मियों के दिन, दुपहरी का वक्त। नदी के किनारे-किनारे झाऊ के छोटे-छोटे पौधों की कतार है। जलावन के लिए झाऊ लादना था। उसने कुल्हाड़ी से झाऊ की शाखाएं काटकर इकठ्ठी की और उनका गट्ठर बांध लिया। तेज धूप के कारण उसका शरीर जलने लगा। इतनी तेज प्यास लगी कि कण्ठ ही सूखने लगा। उसने पानी पीने के इरादे से नदी में उतरना चाहा। तभी उसने देखा कि एक घड़ियाल एक बछड़े को पकड़े लिये जा रहा है। यह देखकर शम्भू से न रहा गया और वह नदी में कूद पड़ा। कुछ दूरी पर पहुंचने पर वह घड़ियाल की पीठ पर चढ़ गया। घड़ियाल की गरदन पर कुल्हाड़ी से प्रहार करने लगा। नदी का जल खून से लाल हो उठा। घड़ियाल घायल हुआ छटपटाने लगा। दर्द के कारण विवश होकर उसने बछड़े को छोड़ दिया। शम्भू भी तैर कर नदी के किनारे आ लगा।

विश्वम्भर बाबू चिकित्सक हैं। बीमार के इलाज के लिए जा रहे हैं। बहुत दूर की यात्रा है। स्टीमर घाट के स्टेशन मास्टर मधु विश्वास के छोटे पुत्र को अम्लशूल का रोग हो गया। बेचारा बहुत दु:ख में है।

विष्णुपुर के पश्चिम की परती मीलों तक फैली हुई है। परती में पहुंचने तक संध्या हो गई। गाय-बकरी चराने वाले अपने पशु लेकर लौट पड़े। विश्वम्भर बाबू ने एक ढोर चराने वाले से पूछा—'क्यों बेटे, बता सकते हो सप्तग्राम यहाँ से कितना दूर है?'

ढ़ोर चराने वाले लड़के ने जवाब दिया—'साब! वह तो कोई सात मील होगा। आज वहां की यात्रा न कीजिए। मार्ग में भीष्महाट की परती पड़ती है। उसके निकट श्मशान है। वहां डाकुओं का डर रहता है।

डाक्टर ने कहा—'बेटे! क्या करें, बीमार बहुत मुसीबत में है, जाना तो पड़ेगा ही।'

यात्रा फिर शुरू हो गई। रात के दस बजे तिल-पनो नहर तक पहुंच पाये। पालकी की छत पर बंधी दवाओं की पेटी की डोरी खुल गई और पेटी नीचे आ गिरी। कैस्टर आयल की बोतल चूर-चूर हो गई। पेटी को तो फिर से मजबूती के साथ बांध दिया गया किन्तु तभी एक और मुसीबत आ गई। नहर पार करके कोई दो मील

ग्रौर ग्रागे बढ़ होंगे कि पालकी का डंडा टूट गया ग्रौर ग्रचानक पालकी जमीन पर ग्रा गिरी। पालकी हलके काठ की बनी हुई थी ग्रौर विश्वम्भर बाबू भारी भरकम शरीर वाले थे।

ग्रब ग्रागे बढ़ने के लिए कोई साधन नहीं था। रात वहीं बितानी थी। विश्वम्भर बाबू ने घास पर कम्बल बिछा दिया। लालटेन पास हो रखी। तभी पालकी उठाने वाले ग्रादमियों के सरदार बुद्धु ने ग्राकर कहा–'वह देखिए कुछ ग्रादमी इधर ही चले ग्रा रहें हैं। ये लोग निश्चित ही डाकू हैं, इसमें कोई शक नहीं है। विश्वम्भर बाबू ने बिना घबराये कहा–'इसमें डरने की क्या बात है ? तुम सब तो हो ही।'

बुद्धु ने कम्पित स्वर में कहा–साब ! बलगू भाग गया है, पल्लू कहीं नजर नहीं ग्रा रहा है। बकसी झाड़ की ग्रोट में जा छिपा है ग्रौर विष्णु के तो भय के मारे हाथ-पैरों में कंपकंपी छूट चली है।

बुद्धु की बात सुनते ही विश्वम्भर बाबू भय के मारे थरथर कांपने लगे। उन्होंने चिल्लाकर कहा–'शम्भू!

हां साहब !–शम्भू ने उत्तर दिया।

ग्रब क्या करना है ? —डाक्टर साहब ने घबराने के साथ शम्भू से सवाल किया।

शम्भू ने निडरता के साथ कहा—'इसमें डरने की क्या बात है ? मैं आपके पास मौजूद हूं।'

लेकिन वे तो पांच हैं—विश्वम्भर बाबू ने फिर कहा।

शम्भू ने कहा—'साहब ! मैं शम्भू जो हूं।' और उसने उठकर छलांग लगाई और तीव्र स्वर में ललकार उठा—'खबरदार !'

डाकू बहुत जोर से हंसने लगे। उन्होंने परवाह नहीं की और आगे बढ़ने लगे। शम्भू ने पालकी का वही टूटा हुआ डंडा अपने हाथ में उठा लिया और घुमाकर डाकुओं की ओर दे मारा। निशान ऐसा सही लगा कि एक साथ तीन डाकू गिर पड़े। अब क्या था। शम्भू ने अपनी लकड़ी उठाई और डाकुओं पर टूट पड़ा। उन पांच में से जो दो डाकू निशाने से बच गए थे, वे सिर पर पांव रख कर पीछे की ओर भागने लगे। वे तीनों वहीं पर पड़े कराहते रहे। तभी डाक्टर साहब ने आवाज लगाई—'शम्भू !'

'हां साहब !'—शम्भू ने उत्तर दिया।

डाक्टर साहब ने कहा—'जल्दी से दवाईयों की पेटी उठा लाओ।'

'क्यों इस समय उसकी क्या जरूरत है ? शम्भू ने कहा।

त्रिश्वम्भर बाबू ने कहा–'इन तीनों की डाक्टरी तो मुझे ही करनी होगी। मरहम-पट्टी करनी पड़ेगी।'

उस वक्त रात बीतने में कुछ ही समय बाकी रह गया था। डाक्टर बाबू और शम्भू ने उन तीनों डाकुओं की बहुत सेवा की।

सुबह हो चुकी थी। सूरज की किरणें धरती को छूने लगी। पालकी उठाने वाले एक-एक करके लौटने लगे बलगू आया, पल्लू आया, बकसी का हाथ थामे हुए विष्णु आया। उस वक्त भी उसका हाथ कांप रहा था।



तोता

एक तोता था

वह बड़ा मूर्ख था। उसे गाना तो आता था, लेकिन शास्त्र नहीं पढ़ता था।

उछलता था, छलांगें भरता था, आकाश में उड़ता था लेकिन कानून और कायदे के नाम से भी वाकिफ न था।

राजा ने कहा–'ऐसा तोता किस काम का? ऐसे तोते से किसी तरह का फायदा नहीं, नुकसान अवश्य है।

उपवन में फल खा जाता है, जिससे राजा-मण्डी के फल बाजार में घाटा लगता रहता है।'

राजा ने मंत्री को बुलाकर आदेश दिया—'इस तोते को शिक्षा दो !'

तोते को शिक्षा दिलाने का काम राजा के भानजे के जिम्मे किया गया।

पण्डितों की सभा बुलाई गई ।

उसमें विचार करने के लिए विषय रखा गया- 'तोते की अशिक्षा का कारण क्या है ?' इस पर विद्वानों के बीच गहरा विचार हुआ।

आखिर निश्चय किया गया कि—'तोता अपना घोंसला साधारण घास-फूस से बनाता है । ऐसे घर में विद्या नहीं मिल सकती। इसलिए सबसे पहले तो यह जरूरी है कि तोते के लिए कोई श्रेष्ठ पिंजरा बना दिया जाय।'

विद्वानों को इस सूझ के लिए खासी भेंट दी गई। वे भी दक्षिणा लेकर प्रसन्नता के साथ अपने अपने घर चले गये।

X X X

पण्डितों के निर्णय के अनुसार कार्यवाही शुरू हो गई। सुनार को बुलाया गया। वह सोने का पिजरा घड़ने में जुट गया। ऐसा अनोखा पिंजरा बना कि उसे देखने के

लिए देश विदश के आदमी इकट्ठे होने लगे। कोई कहता 'शिक्षा की तो समाप्ति हो गई।' कोई कहता-शिक्षा न भी हो तो क्या, पिंजरा तो अनोखा बन गया। इस तोते की भी क्या तकदीर है ?

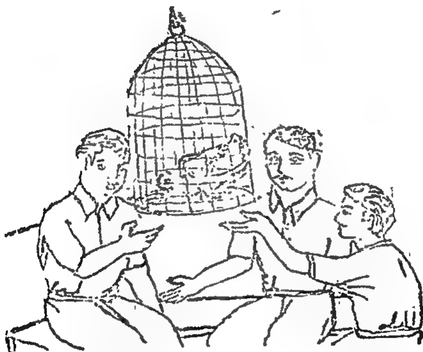
अनोखा पिंजरा बनाने के लिए सुनार को इनाम के रूप में भरी हुई थैलिया भेट की गई। वह उसी वक्त अपने घर के लिए विदा हो लिया।

पण्डितजी को बुलाया गया। वे उस तोते को शास्त्र पढ़ाने लगे। वे कहने लगे यह काम थोड़ी किताबों का नहीं है।'

राजा के भानजे को जब यह मालूम हुआ तो उसने किताबें लिखने वालों को बुलवा लिया। किताबों की नकलें की जाने लगी। नकल से नकलें होने लगी। कुछ ही दिनों में नकल की गई किताबों के पहाड़ की तरह ढेर लग गये। जिस किसी ने उन ढेरों को देखा-उसने यही कहा-'क्या बात है ? इतने शास्त्रों को रखने के लिए स्थान भी नहीं मिल सकेगा।'

नकल करने वालों को भारी इनाम दिये गये। वे लद्दू बैलों पर लाद लाद कर अपने-अपने घर की ओर विदा हो चले। उनके संसार में आर्थिक तंगी का नामो-निशान भी नहीं रहा।

अनोखे पिंजरे की देख रेख में राजा साहब के भानजे अधिक व्यस्त रहने लगे। उनके पास समय भी नहीं बच पाता था। दिन रात इसी काम में व्यस्त रहते थे। मरम्मत के काम भी होते रहते थे। पिंजरे को झाड़ना, पोंछना और पालिश करने वालों की कमी न आने दी जाती थी।



जो कोई भानजे साहब के काम को देखता यही दुहराता कि 'उन्नति हो रही है।'

तोते की शिक्षा वाले काम पर बहुत सारे आदमियों को लगाया गया और उन आदमियों के काम की जांच पड़ताल और देखने के लिए भी अनेक आदमियों को लगाया गया और उनकी देख रेख के लिए भी आदमियों को रखा गया। सभी हर महीने मोटी-मोटी तनख्वाह ले ले कर अपनी अपनी पेटियां भरने लगे।

काम पर लगे हुए सभी आदमी बहुत खुश रहने लगे। उनके चाचा के मौसे के लड़के आदि सभी खुश हुए। बड़े-बड़े कमरों में मोटे-मोटे गद्दे बिछाकर आराम से बैठ गये।

X X X

दुनिया में अनेक चीजों की कमी खटकती रहती है लेकिन् चुगलखोरों का कोई अभाव नहीं है। एक की तलाश करो, हजार मिल जाते हैं। वे कहने लगे-'पिंजरे का तो विकास हो रहा है किन्तु तोते की खोज-खबर लेने वाला कोई नहीं दिखाई देता।'

उनके मुंह से निकली बात राजा के कानों तक जा पहुंची। राजा ने अपने भानजे को हाजिर होने का आदेश भिजवा दिया। भानजे से कहा-'यह कैसी बात सुनाई पड़ रही है।'

भानजा ने निवेदन किया-'महाराज ! यदि सच-सच सुनना चाहते हो तो सुनारों को बुलवा लीजिए,

विद्वानों को बुलवा लीजिए, पिंजरे की मरम्मत करने वाले और मरम्मत की देख-रेख करने वालो को बुलवा लीजिए ! चुगलखोरों को दाना-पानी हाथ नही लग पाता, इसीलिए वे ऐसी ओछी बातें उछालते रहते हैं ।

भानजे साहब का उत्तर सुनकर राजा ने पूरे मामले को अच्छी तरह समझ लिया । प्रसन्न होकर राजा ने भानजे के कण्ठ में उसी समय सोने के हार पहना दिये ।

एक दिन राजा के मन में आया कि एक दफा अपनी आंखों से भी देख लिया जाय कि तोते की पढ़ाई किस तरह चल रही है ? कितनी तेजी के साथ काम चल रहा है । महाराज अपने मन्त्रियों, मुंह चले दोस्तों और मुसाहिबों के साथ विद्या-भवन में जा पहुचे ।

वहां राजा के पहुचते ही द्वार पर ही शंख, घड़ियाल, ढाल, तासे, खुरदक, नगाड़ें, तुरहियां, भेरियां, दमामे, कासे, बांसुरिया, झाल, करताल, मृदग, जगझम्प आदि अपने-आप ही बजने लगे । पण्डित लोग अपनी-अपनी चोटियों को जोर-जोर से हिलाते हुए ऊँचे स्वर में मंत्री का उच्चारण करने लगे ।

पिंजरें के काम में लगे हुए मिस्त्री, मजदूर, सुनार आदि भी महाराजा की जय-जय करने लगे । उनके चचेरे मौसेरे, फूफेरे व ममेरे भाई भी जय-जयकार करने लगे ।

भानजे ने निवेदन किया—"महाराज अपनी आंखों से सब कुछ देख रहे हैं न ?"

महाराज ने अजरजभरी निगाहों से चारों ओर देखते कहा—"आश्चर्य ! शब्द तो कोई कम नही हो रहा !"

भानजे ने निवेदन किया—"शब्द ही क्यो, इसके अर्थ भी किसी तरह कम नही है ।"

राजा बहुत खुश हुए और लौट आये ।

ड्योढी के बाहर हाथी की सवारी को तैयार हुए पास ही के झुरमुट में छिपा बैठा चुगुलखोर कहने गा—"महाराज ! आपने तोते को भी देखा है क्या ?"

महाराजा सुनकर सकते में आ गये । उन्होने वार किया—"अरे हां ! यह तो मैं बिल्कुल भूल ही गया । तोते को तो देखा ही नहीं ।" वे वहा से फिर विद्यालय की ओर लौट पड़े । पडित से कहा-"मुझे यह देखना कि तुम तोते को किस रीति से पढा रहे हो ?"

पडित राजा को पढाई की *व्यवस्था* और शैली बताने लगे । उनकी शैली देखकर महाराजा बहुत खुश । फूले नही समाये ।

पढाने की शैली तोते की तुलना में इतनी बड़ी थी वहां तोता नाम का कोई जीव दिखाई ही नहीं देता था ।

राजा ने विचार किया—'अब तोते को देखने की ई आवश्यकता ही नही है । उसे देखे बिना भी काम चल सकता है ।"

महाराज अच्छी तरह जान गये थे कि तोते की

पढ़ाई की व्यवस्था में किसी प्रकार की कमी या भूल चूक नहीं है। पिंजरे में दाना पानी का तो नाम भी न था वहां केवल ज्ञान ही ज्ञान था। केवल शिक्षा थी। आस-पास ढेर सारी किताबें जमा थी, उनके पन्ने फाड़-फाड़ कर कलम की नोंक से तोते के मुख में घुसेड़े जाते थे।

तोता गाना भूल गया था। चीखने-चिल्लाने के लिए कोई अवसर न रह गया था। तोते का मुंह ठसाठस भर गया था—जिससे उसका बोलना कतई बंद हो गया था। उस हाल को देखने वाले के भी रोंगटे खड़े हो जाते थे।

राजा संतुष्ट हो वहां से चल दिये। ड्योढी के बाहर हाथी पर चढ़ने लगे तो उन्होंने एक सरदार को आदेश दिया कि—"चुगुलखोर के कान अच्छी तरह खेंच देना।"

X X X

तोता शिक्षा पाता हुआ इस शैली से दिन प्रतिदिन अधमरा होता गया। सभी ने यह समझा कि शिक्षा की प्रगति अत्तीत आशाप्रद है। फिर भी पक्षी स्वभाव के एक स्वभाविक दोष से तोते का पिंड अभी छूट नहीं पाया था। प्रातःकाल होते ही वह प्रकाश की ओर निहारने लगता था और बड़ी ही अन्याय भरी रीति से अपने पंख फड़फड़ाने लगता था। इतना हो नहीं, किसी-किसी दिन तो ऐसा भी देखा गया कि वह अपनी बीमार चोंचों से सोने के पिंजरे की ताड़ियां काटने में लग जाता।

एक दिन सुबह-सुबह जब वह इस तरह की हरकत कर रहा था तो कोतवाल ने देख लिया। वह गरज उठा–"यह कैसा गुनाह कर रहे हो ?"

तुरन्त ही लोहार को बुलाया गया। लोहार आग माथी और हथौड़ा लेकर हाजर हो गया। वह धम्माधम लोहा पीटने लगा। शीघ्र ही लोहे की सांकल तैयार की गई और तोते के पंख भी काट दिये गये। उसे पर्याप्त सजा दी गई।

राजा के रिश्तेदारों ने हांडी जैसे मुंह लटका दिए और सिर हिलाते हुए कहा—इस देश के पक्षी केवल मूर्ख ही नहीं, अपितु नमक हराम भी है।

इस घटना के बाद पंडितों ने शिक्षा का नया अध्याय रचा। एक हाथ में कलम और दूसरे हाथ में बरछा लेकर कांड रचाना शुरू कर दिया, जिसे शिक्षा या पढ़ाई कहा जाता है।

लोहार का धंधा चमक गया। उसे मिलने वाली इनाम से उसकी पत्नि के अंगों पर सोने के जेवर शोभित होने लगे। कोतवाल की बुद्धिमानी देखकर राजा ने प्रसन्न हो उसे शिरोपाव भेंट किया।

X X X

तोता दम तोड़ बैठा।

किस दिन और कब मरा? इसका निश्चय कोई भी नहीं कर सकता।

चुगुलखोर ने तेजी के साथ अफवाह फैला दी–"तोता मर गया।"

राजा ने भी खबर सुनी तो अपने भानजे के हाजिर होने का हुक्म फरमा दिया। भानजा उपस्थित हुआ। राजा ने कहा–"भानजे साहब ! यह क्या सुन रहे हैं ?"

भानजे ने निवेदन किया–"महाराज ! तोते की पढ़ाई पूरी हो चुकी है।"

राजा ने सवाल किया–"अब भी वह उछलता-फुदकता है ?

भानजे ने कहा–"महाराज ! अब यह हिमाकत नहीं करता।"

"अब भी उड़ता है ?"

"नाम ही नहीं लेता।"

"अब भी गाता है ?"

"नहीं।"

"दाना-पानी न मिलने पर अब भी चिल्लाता है?"

"नहीं।"

राजा ने कहा–एक दफा तोते को यहां हाजिर करो, मैं उसे देखना चाहता हूं।

तोता दरबार में लाया गया।

साथ में कोतवाल भी मौजूद था।

उनके पीछे सिपाही और घुड़सवार भी थे।

राजा ने तोते को चुटकी से दबाया। तोते ने न हां की और न ना ही। उसके पेट में किताबों के सूखे पत्ते जरूर खड़खड़ाने लगे।

बाहर वसन्त की दक्खिनी हवा में नये किसलयों ने अपनी आह से वन के आकाश को बेचैन कर दिया।



जादू के खेल

कुसुमी ने अपने दादाजी से पूछा—"अच्छा दादाजी! हमने सुना है कि कभी आपने बड़ी-बड़ी बातों के बारे में बड़ी-बड़ी पोथियां रची थी।"

"जिन्दगी मे अनेक बुरे काम किये हैं, उन्हें स्वीकार तो करना ही पड़ेगा। भारतचन्द्र ने कहा है—"बहुत ज्यादह बातें करते जो लोग, बहुत ज्यादह झूठों का उनको रोग।"

बाबा! मुझे यह अच्छा नहीं लगता कि मैं आपका वक्त बर्बाद कर देती हूं।

वक्त बर्बाद करने के लिये उपयुक्त आदमी तकदीर वालों के पास ही मिलते हैं।

तो मैं ही आपकी वह उपयुक्त व्यक्ति हूँ।

मेरी तकदीर अच्छी थी कि मिल गई, अन्यथा तलाश करने पर भी नहीं मिलती।

आपसे बहुत ज्यादा बचपना करातो हूं।

देखो, इतने-इतने दिन मैंने गम्भीरता के वस्त्र धारण कर बिताये है और सम्मान भी बहुत पाया है। अब तुम्हारे शासन में पहुंचकर बचपन के ढीले ढाले वस्त्र धारण किये तो जाने कि विश्वास के पल मिले हैं। वक्त बर्बाद करने की बात क्या करतो हो बिटिया। एक वक्त ऐसा था कि वक्त बर्बादी के लिए मुझे तनिक भी अवकाश नहीं मिल पाता था। उस वक्त मैं समय के पराधीन था। आज मैंने उस गुलामी से छुटकारा पा लिया है। अब जो थोड़े बहुत दिन रहे हैं, वे आराम के साथ गुजर जायेंगे। बचपना करने को संगाती पाकर लम्बी चौड़ी आराम कुर्सी पर पैर फैला कर बैठा हूं। जो मेरे मन में आयेगा कहता चलूंगा, उसके लिये किसी के सामने सिर खुजला कर इजाजत नहीं चाहनी होगी।

इस बचपने के जोश में ही आप जो मन में आता है, आकाशा बातें करते हो।

बिटिया रानो ! ऐसी कौनसी बात बनायी ?

जैसे आपके इन ह. च. हा. साहब की बात ! ऐसा बिगड़ैल सिरडी आदमी भी कहीं होता है ।

देखो, बिटिया, कभी-कभी ऐसे प्राणी भी जन्म ले लेते हैं जिनके अंग अजीब गरीब तथा टेढ़ें मेढें होते हैं। मेरे ज दूगर में यह ह. च. हा. भी इसी प्रकार तसरीफ लाये थे ।

इनसे मिलकर आपको बेहद प्रसन्नता हुई थी ?

हां, हुई तो थी । उस वक्त तुम्हारी ईरू मौसी अपने पति के घर जा चुकी थी । मेरी बोलती बन्द करने वाला कोई नहीं रहा था । ऐसे वक्त में हरीशचन्द्र हालदार ने कदम रखे थे । पूरे सिर पर एक भी बाल न था उनकी चाल-ढाल और हरकतें हैरत में डालने वाली थी । तुम्हारी मौसी की रीति से एकदम उल्टी ।

एक दिन तुम्हारी मौसी ने जटाई बुढ़िया की बात सुनाई थी । जटाई बुढ़िया के साथ अमावस की अंधेरी रातों में ही मुलाकात हो सकती थी । जटाई चांद पर बैठकर चरखा चलाया करती थी । वह चरखा अधिक दिन तक नहीं चल पाया। ठीक ऐसे ही वक्त प्रोफेसर हरीश चन्द्र हालदार आये । प्रोफेसर की पदवी उन्होंने अपने नाम के आगे खुद ने लगाई है । उनके हाथ ऐसी 'सफाई'

वाले हाथ थे, जिनसे जादू के खेलों की गहरी छनती है। एक दिन मेछल सांझ के पहर चाय के साथ भुना हुआ चिवड़ा खाने के पश्चात् वह कहने लगा कि जादू के जाल तो इस तरह के होते हैं कि वह सामने जो दीवार दिखाई पड़ रही है, वह पलक झपकते ही गायब हो जाय!

पंचानन ने अपनी सफाचट खोपड़ी पर हाथ फेरते हुए कहा—'यह विद्या कभी थी तो सही, हमारे मुनियों को ज्ञान था।'

सुनते ही हरीशचन्द्र का क्रोध चढ़ आया और टेबिल पर मुक्का मारकार कहने लगा अरे, रहने भी दो अपने मुनियों को राक्षस पिशाचों को और भूत-प्रेतों को।

पंचानन ने फिर सवाल किया—'तो आप क्या मानते हैं?'

प्रोफेसर हरीश ने संक्षिप्त सा जवाब दिया 'द्रव्य गुण।'

हमने उत्कण्ठा के साथ सवाल किया—'भाई! यह द्रव्यगुण क्या होता है?'

प्रोफेसर ने कहना आरम्भ किया—जो कुछ भी है केवल कल्पना की उड़ान नहीं है, तंतर-मंतर नहीं है, मूर्खों को बहकाने वाली कोई बात नहीं है।

हम जानने के लिए जिद करने लगे। 'आप बताते

क्यों नहीं है कि यह द्रव्य गुण क्या वला है ?'

प्रोफेसर ने समझाना शुरू किया–रुकिए अभी समझाता हूं । आग है तो बहुत अचरज की वस्तु, किन्तु उन मुनियों की बात पर आग नहीं जला करती ।

उस आग को जलाने के लिए ईंधन की आवश्यकता होती हैं । हमारा जादू भी ठीक वैसा ही है । इसके लिए सात सात साल तक निरहार रह कर कोई कठोर तप नहीं करना पड़ता । इसके लिए तो केवल द्रव्यगुण की जानकारी कर लेना पर्याप्त होता है । जानकारी हो लेने पर जो चाहे वही जादू के खेल दिखा सकता है । आप भी कर सकते हो, मैं भी कर सकता हूं ।

प्रोफेसर ! क्या कह रहे हो ? इस दीवार को हम भी गायब कर सकते हैं ?

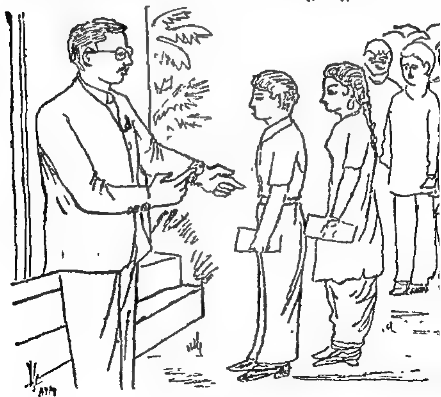
क्यों नहीं ? इसमें मन्तर-जन्तर पढ़ने की जरूरत नहीं है, जरूरत केवल माल मसाले की ।

बिटिया ! मैंने, प्रोफेसर से कहा–'बता भी दीजिए ! इसके लिए क्या-क्या माल मसाला चाहिए ?'

अभी कहता हूं । कोई खास वस्तु की आवश्यकता नहीं है । केवल विलायती अमड़ें को एक गुठली और सिलवट्टा ।

मैंने कहा–'यह तो बहुत ही सहज बात है । अमड़े को गुठली और सिलवट्टा अभी ला देता हूं, तुम इस दीवार को गायब करके बताना ।'

प्रोफेसर ने कहा—'अमड़ का पेड़ ठीक आठ साल सात महिने का होना चाहिये। उसका अंकुर कृष्ण पक्ष की बारस को चांद निकलने के ठीक कुछ समय पहले का फूटा होना चाहिये और उसकी यह जन्म तिथि शुक्रवार को पहर भर रात रहे से पड़ी होनी चाहिए। शुक्रवार को यदि उन्नीस अगहन का न रहा तो बेकार होगा। विचार-समझ कर देख लो, इसमें कहीं भूल-चूक या धोखा



हो गया तो ठीक नहीं होगा । दिन, पहर, तिथि-मिति सब कुछ बंधे बंधाये हैं ।

हमने विचार किया—'बात तो सुनने में बड़ी बेलाग मालूम होती है । वृद्ध माली को ऐसे मुहुरत की गुठली की खोज में लगा देने का निश्चिय किया ।

प्रोफेसर हरीश ने फिर कहा—'एक मामूली-सी शर्त और । सिलवट्टा छघलेश्वर पर्वत की चट्टान का ही हो, जिसे लामाओं द्वारा कलिमपोग् के बाजार में बेचने के लिए लाया गया हो ।

पंचानन ने अपनी सफाचट खोपड़ी पर हाथ फेरते हुए कहा—'मामला तो बहुत कठिन मालूम होता है ।

प्रोफेसर ने कहा—इसमें उलझन क्या है ? खोज की जाय तो ऐसी कौनसी चीज है, जिसका पता न लग सके ।

मैंने मन ही मन निश्चय किया—'मैं ये सभी वस्तुएं खोज कर रहूंगा । इनके लिए बच निकलने का कोई बहाना नहीं रहने देना चाहिए ।

मैंने प्रोफेसर से पूछा—'उसके बाद क्या करना होगा ? उस सिलवट्टे का क्या करेंगे ?

रुकिए, अभी एक छोटी सी बात और है एक दक्षिणा वर्त शंख की भी जरूरत होगी ।

पंचानन ने कहा—'उस शंख को तलाशना कोई हंसी-मजाक की बात नहीं है ! जिसे मिलता है वह महाराजा हो जाता है ।'

हे महाराजा नहीं, गधे का सींग हो जाता है। शंख शख ही है, उसे अपनी बंगाली में 'शाँख' कहा जाता है । उस शंख को अमड़े की गुठली से सिल पर घिसना होगा। घिसते-घिसते गुठली का नाम भी नहीं बचेगा और शख का निशान भी नहीं रहेगा । सिल और शंख दोनों मिलकर चटनी की तरह हो जायेंगे । बस, द्रव्य तैयार ! उस द्रव्य का लेप दीवार पर लगा दीजिए, आगे कुछ भी करने की जरूरत नहीं है । इसी को द्रव्यगुण कहा जाता है । आप यह तो जानते ही हैं कि द्रव्य गुण से दीवार बनी हुई है। किसी मंतर-तंतर के बल पर नहीं । यह दीवार द्रव्यगुण से उड़ जायेगी । धुंवा की तरह उड़ती ही दिखाई देगी। इसमें कोई अचरज की बात नहीं है ।

मैंने कहा—'बात तो बिलकुल सच लगती है ।'

पंचानन बायें हाथ में हुक्का लिये थे, दायें हाथ को गंजी खोपड़ी पर फेरने लगा । हमारी तलाश का कोई फल नहीं निकलने के कारण यह साधारण सी बात साबित होने से रह गयी । इतने दिनों के पश्चात् यह अनुभव हुआ था कि ईरू के मंतर, जंतर, राजमहल आदि सभी मन-

गढ़न्त बातें थीं। प्रोफेसर महोदय के द्रव्यगुण में किसी भी प्रकार की ठग विद्या या धोखा नहीं दिखाई दे रहा था। दीवार ठोस को ठोस बनी रही। प्रोफेसर पर हमारी श्रद्धा और भक्ति बढ़ती ही गई।

संयोग की बात, एक दफा न जाने मन की किसी भूल से पराधीन होकर उन्होंने द्रव्यगुण को हमारी पकड़ की पहुंच के भीतर आने के लिए छूट दे दी। शर्त थी, गुठली को मिट्टी में गाड़ने के घंटे भर भीतर ही वृक्ष तैयार मिलेगी और उसमें फूल भी लग जायंगे।

हमने कहा—'अचरज'

प्रोफेसर ने कहा—'इसमें अचरज की क्या बात है। सब द्रव्यगुण का चमत्कार है। गुठली को नागफनी के लासे में इक्कीस दफा लपेट कर इक्कीस बार ही सुखा दीजिए। उसके बाद मिट्टी में दबा दीजिए। फिर देखिए, क्या होता है ?

हम उनकी इस शर्त को पूरी करने के लिए जी-जान से लग गये। लासा लगाने और सुखाने में लगभग दो महीने बीत गये। आश्चर्य की बात, पेड़ भी उगा और फल भी किन्तु घंटे भर में नहीं, पूरे सात बरस लग गये। अब समझ में आया कि द्रव्य गुण किसे कहा जाता है ?

प्रोफेसर ने सफाई दी—लासा ठीक तरह नहीं

गढ़न्त बातें थीं। प्रोफेसर महोदय के द्रव्यगुण में किसी भी प्रकार की ठग विद्या या धोखा नहीं दिखाई दे रहा था। दीवार ठोस को ठोस बनी रही। प्रोफेसर पर हमारी श्रद्धा और भक्ति बढ़ती ही गई।

संयोग की बात, एक दफा न जाने मन की किसी भूल से पराधीन होकर उन्होंने द्रव्यगुण को हमारी पकड़ की पहुंच के भीतर आने के लिए छूट दे दी। शर्त थी, गुठली को मिट्टी में गाडने के घंटे भर भीतर ही वृक्ष तैयार मिलेगी और उसमें फूल भी लग जायगे।

हमने कहा—'अचरज'

प्रोफेसर ने कहा—'इसमें अचरज की क्या बात है। सब द्रव्यगुण का चमत्कार है। गुठली को नागफनी के लासे में इक्कीस दफा लपेट कर इक्कीस बार ही सुखा दीजिए। उसके बाद मिट्टी में दबा दीजिए। फिर देखिए, क्या होता है ?

हम उनकी इस शर्त को पूरी करने के लिए जी-जान से लग गये। लासा लगाने और सुखाने में लगभग दो महीने बीत गये। आश्चर्य की बात, पेड़ भी उगा और फल भी किन्तु घंटे भर में नहीं, पूरे सात बरस लग गये। अब समझ में आया कि द्रव्य गुण किसे कहा जाता है ?

प्रोफेसर ने सफाई दी—लासा ठीक तरह नहीं

लग पाया ।'

हमने भी समझ लिया कि यह ठीक लगा । लाला संसार में नहीं मिल सकता, किन्तु इसी समझ में बहुत समय लग गया ।

मुन्शी

दादीजी ! आजकल आपके मुन्शी जी कहाँ हैं ?'

'अब वह वक्त आ गया है, जब इस सवाल का जवाब दे सकूँगा । किन्तु फिर भी यह ठीक होगा कि कुछ बात के लिए अभी और धीरज रखना चाहिए ।'

'दादीजी ! यदि आप फिर इसी तरह की बातें बनाते रहे तो आपके साथ बातचीत का सिलसिला बिल्कुल बन्द ।'

'अरे ! यह क्या ? सत्यानाश ! ऐसा कभी न करना । उसमें तो यह ठीक होगा कि झूठ बोल दिया जाय । जिस वक्त तुम्हारे दादाजी स्कूल से भाग आते थे इस वक्त तुम्हारे दादाजी की ठीक-ठीक उम्र बताना तो बहुत कठिन है ।

'वह शायद सिरफिरे थे ?'

'हां वैसे ही जैसे मैं हूं।'

'आप और सिरफिरे ? आप कब क्या कह दें ? कोई कुछ भी नहीं कह सकता है।'

उनके सिरफिरेपन की बातें सुन लेने पर तुम खुद जान जाओगे कि वह मुझसे कितने मिलते थे। उनमें और मुझमें बड़ी अनोखी बराबरी रही है।

'मैं भी सुनूं तो ?'

जैसे यही कि वह कहा करते थे–'दुनियां में मैं अनोखा हूं, दूसरा नहीं है 'मैं' भी इसी तरह कहता रहता हूं।'

'आप तो ठीक ही कहते हैं किन्तु उनका कहना ठीक नहीं था।'

'बिटिया ! सच तो सच ही होता है, जब वह सब पर लागू हो सके। जो सब के साथ नहीं घट सके वह कभी सच भी नहीं हो सकता है। भगवान ने कई करोड़ इन्सानों को बनाया है लेकिन हरेक आदमी अपने आप में अनोखा ही है। हरेक आदमी को घड़ लेने के बाद उन्होंने अपना वह सांचा तोड़-मरोड़ दिया है। ज्यादहतर इन्सान ऐसे हैं, जिन्हें यह मान लेने में चैन मिलता है कि मैं कोई अनोखा नहीं हूं, किसी भी दस पांच लोगों से मिलान

करने पर, मैं उनके समान ही साबित होता हूं।' किन्तु भाग्य से एकाध इन्सान ऐसे भी हैं जो यह जानते और अनुभव करते हैं कि मैं अनोखा हूं, मेरे बराबर कोई दूसरा आदमी नहीं है। मुन्शी जी भी इसी तरह के अनोखे इन्सान थे।'

आप मुन्शीजी के बारे में साफ-साफ बातें कह दीजिए, आपकी आधी बात तो मेरी समझ में आती ही नहीं।

फिर तो तनिक विश्वास रखो, मैं नम्बर-नम्बर से सारी बातें कह रहा हूं।



'वह शायद सिरफिरे थे ?'

'हां वैसे ही जैसे मैं हूं।'

'आप और सिरफिरे ? आप कब क्या कह दें ? कोई कुछ भी नहीं कह सकता है।'

उनके सिरफिरेपन की बातें सुन लेने पर तुम खुद जान जाओगे कि वह मुझसे कितने मिलते थे। उनमें और मुझमें बड़ी अनोखी बराबरी रही है।

'मैं भी सुनूं तो ?'

जैसे यही कि वह कहा करते थे—'दुनियां में मैं अनोखा हूं, दूसरा नहीं है 'मैं' भी इसी तरह कहता रहता हूं।'

'आप तो ठीक ही कहते हैं किन्तु उनका कहना ठीक नहीं था।'

'बिटिया ! सच तो सच ही होता है, जब वह सब पर लागू हो सके। जो सब के साथ नहीं घट सके वह कभी सच भी नहीं हो सकता है। भगवान ने कई करोड़ इन्सानों को बनाया है लेकिन हरेक आदमी अपने आप में अनोखा ही है। हरेक आदमी को घड़ लेने के बाद उन्होंने अपना वह सांचा तोड़ मरोड़ दिया है। ज्यादहतर इन्सान ऐसे हैं, जिन्हें यह मान लेने में चैन मिलता है कि मैं कोई अनोखा नहीं हूं, किसी भी दस पांच लोगों से मिलान

करने पर, मैं उनके समान ही साबित होता हूं।' किन्तु भाग्य से एकाध इन्सान ऐसे भी हैं जो यह जानते और अनुभव करते हैं कि मैं अनोखा हूं, मेरे बराबर कोई दूसरा आदमी नहीं है। मुन्शी जी भी इसी तरह के अनोखे इन्सान थे।'

आप मुन्शीजी के बारे में साफ-साफ बातें कह दीजिए; आपकी आधी बात तो मेरी समझ में आती ही नहीं।

फिर तो तनिक विश्वास रखो; मैं नम्बर-नम्बर से सारी बातें कह रहा हूं।



बिटिया ! हमारे घर में मुन्शी जी थे। वह भैया को फारसी पढ़ाया करते थे। विधाता ने उनका ढांचा बनाते समय उनके शरीर के लिए मांस की तंगी महसूस की थी। सिर्फ हड्डियों का ढांचा था-जिस पर मोमजामे की तरह चमड़ी मढ़ी हुई थी। उन्हें देखकर उनकी ताकत के बारे में कोई भी ठीक अन्दाज नहीं लगा पाता था वह खुद ही अपनी ताकत का अन्दाज जानते थे। किसी और को कुछ भी पता न था। संसार के पहलवान जो कि बड़ी-बड़ी ताकत वाले होते हैं वे कभी जीतते हैं तो कभी चित्त भी होते हैं। लेकिन मुन्शी जी को अपनी समझदारी और बलबूते पर घमंड था, वह किसी से कभी हल्के पड़े हो नहीं। अपनी सूझ में किसी से कम साबित होने का उदाहरण उनके मन में कभी आया ही नहीं, चाहे लोग समझते रहे हों। फारसी की सीख देने में यदि वह बात लागू होती तो दुनिया को मानने में कोई मुश्किल न होती।

जब कभी फारसी की चर्चा चलती तो मुन्शी जी झट से कह बैठते—अरे यह भी कोई पढ़ाई है। मुन्शी जी को अपने गाने की कला पर अटूट विश्वास था। वास्तव में उनका गला इस तरह का था कि उससे चिल्लाने या रोने की सी बेसुरी आवाज निकलती थी। जब कभी वे

गाते तो मुहल्ले के लोग मकान के बाहर जमा हो जाते और एक ही सवाल करते–'घर में कोई आफत तो नहीं आ गई ? सब कुछ तो ठीक है ?

हमारे घर में गाना गाने के एक उस्ताद भी रहा करते थे, जिनका नाम विष्णु जी था। वह हमेशा अपना सिर पीट कर कहा करते थे–'ओह ! ऐसा लगता है कि कि मुन्शीजी एक न एक दिन मेरी रोटी राजी छिनवा कर कर ही दम लेंगे।

विष्णुजी के इस दुःख को सुनकर भी मुन्शीजी को कुछ भी फिक्र न होता, कुछ भी परवाह नहीं करते अपितु तनिक से मुस्करा कर रह जाते।

सभी लोग कहते–"भगवान ने वास्तव में मुन्शीजी को कितना सुरीला और मीठा गला दिया है।" मुन्शीजी अपनी बढ़ाई सुनकर फूले न समाते। यह उनके गायन का हाल था।

एक और विशेपता मुन्शीजी में थी। उनको पूरा ऐतवार था कि अंग्रेजी बोली के मामले में इंग्लैंड में पैदा हुआ अंग्रेज भी उनके सामने नहीं ठहर सकता। उनका सोचना था कि-"अगर मैं चाहूं तो अंग्रेजी बोलने के मामले में मंच पर उतर कर सुरेन्द्र बनर्जी को देश छोड़ कर भागने के लिये विवश कर दूं।" किन्तु इस तरह का कदम उठाना उन्होने ठीक न समझा। गवैये विष्णुजी की रोटी-

होती थी। हम भी मुंशीजी को बतला देते कि हमें छुट्टी मिल गई है। मुंशीजी होंठ दबाकर मुस्करा उठते और कहते—"मजाल है कि छुट्टी मंजूर न होती ! मुंशीजी की अंग्रेजी में वह ताकत है, वह ताकत है कि मत पूछो। यह अंग्रेजी तो केवल ग्रामर के धक्के से अदालत के जज की राय भी बदल सकती है।'

हम सभी मुंशीजी की बात का समर्थन करते और हां में हां मिलाते हुये कहते—"ठीक ही है।" किन्तु कभी ऐसा मौका नहीं आया जब उनकी कलम अदालत के जज के सामने पेश की गई हो !

इन सभी बातों से बढ़कर मुंशीजी को लाठी चलाने की कला पर घमण्ड था। हमारे आंगन में सूरज की किरणें बिखरते ही वे अपनी होशियारी के साथ लाठी चलाने के करतब दिखाने शुरू कर देते थे। वे अपनी ही परछाई से लाठी का खेला खेला करते थे। गरज कर कभी परछाई के पैर पर लाठी की मार करते तो कभी गरदन पर जमाते, तो कभी सिर पर मारते। फिर मुंह उठाकर चारों ओर नजर दौड़ाते कि जो लोग खड़े हुए हैं, उनकी क्या राय है ?

खड़े हुए लोग कह पड़ते—"शाबास !"

कोई बोलता—"परछाई का भाग्य ही समझो कि

रोजी छिनने से बच गई और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी देश छोड़ कर भागने से बच गये। जब मुन्शीजी को ये बातें सुनाई जाती तो वे सिर्फ मुस्करा कर जाते।

किन्तु मुन्शीजी के अंग्रेजी बोलने की कला और ज्ञान के कारण हमें भी कई बार आई आफत में सहूलियत मिल जाया करती थी। बिटिया! तुम्हें तो साफ-साफ ही बता देता हूं उस वक्त हम लोग बंगाल अकादमी में पढ़ा करते थे। हमारी शाला के मालिक डिकरूज साहब थे। उन्होंने हमारे बारे में एक राय बना रखी थी कि इन लड़कों को तीन जन्म में भी पढ़ना-लिखना नहीं आ सकेगा किन्तु इस बात की हम भी परवाह नहीं करते थे। हमें न तो विद्या की तमन्ना थी और न बुद्धि की ही। हमारे पास खानदानी जायदाद तो खुद की थी ही। फिर भी डिकरूज साहब के स्कूल से छुट्टी मारने में उनके यहां के कायदे-कानून के अनुसार चलना ही पड़ता था। गार्जियन के लेटर में छुट्टी की मांग का कारण बताना पड़ता था।

छुट्टी की चिट्ठी चाहे फर्जी ही हो। लेकिन वे साहब आखें बन्द कर छुट्टी मंजूर कर दिया करते थे। उन्हें तो अपनी माहवारी फीस वसूल करने से मतलब था। उसमें किसी तरह का घाटा नहीं होना चाहिए था। हमारे भागने या छुट्टी करने से उन्हें किसी तरह की तकलीफ न

होती थी । हम भी मुंशीजी को बतला देते कि हमें छुट्टी मिल गई है । मुंशीजी होंठ दबाकर मुस्करा उठते और कहते—"मजाल है कि छुट्टी मंजूर न होती ! मुंशीजी की अंग्रेजी में वह ताकत है, वह ताकत है कि मत पूछो । यह अंग्रेजी तो केवल ग्रामर के धक्के से अदालत के जज की राय भी बदल सकती है ।'

हम सभी मुंशीजी की बात का समर्थन करते और हां में हां मिलाते हुये कहते—"ठीक ही है ।" किन्तु कभी ऐसा मौका नहीं आया जब उनकी कलम अदालत के जज के सामने पेश की गई हो !

इन सभी बातों से बढ़कर मुंशीजी को लाठी चलाने की कला पर घमण्ड था । हमारे आंगन में सूरज की किरणें बिखरते ही वे अपनी होशियारी के साथ लाठी चलाने के करतब दिखाने शुरू कर देते थे । वे अपनी ही परछाई से लाठी का खेल खेला करते थे । गरज कर कभी परछाई के पैर पर लाठी की मार करते तो कभी गरदन पर जमाते, तो कभी सिर पर मारते । फिर मुंह उठाकर चारों ओर नजर दौड़ाते कि जो लोग खड़े हुए हैं, उनकी क्या राय है ?

खड़े हुए लोग कह पड़ते—"शाबास !"

कोई बोलता—"परछाई का भाग्य ही समझो कि

वह अब तक वैसो की वैसी ही है।'

इससे हम तो यह सीख पाये कि परछाई से लड़ने पर इन्सान जिन्दगी में कभी हारता नहीं है।

एक बात यह भी समझ में आई कि हार-जीत मन की है। मन के हारे हार हैं, मन के जीते जीत। यदि दिल में यह ठान लिया जाय कि में जीत गया तो उस जीत को हार में कोई बदल नही सकता है। उसे कोई छीन नहीं सकता है। आखिर तक मुन्शीजी की ही हमेशा जीत होती रही। सभी लोग मुंशीजी को शाबासी देते रहते और वे भी मुंह दबाकर तनिक से मुस्कारते रहते।

बिटिया! अब तो तुम पहचान या समझ गई होगी कि मुन्शीजी के सिरफिरेपन और मेरे सिरफिरेपन में कितनी बराबरी है? और किन बातों में समानता है?

मैं भी अपनी छाया के साथ लड़ाई करता रहता हूँ। उस लड़ाई में हमेशा मैं ही जीतता रहता हूं। इस मामले में मुझे कभी कोई शक नहीं होता। इतिहास भी परछाई की लड़ाई को ही वास्तविक लड़ाई के रूप में पेश करता है।

गप

दिन चढ़ता है। धूप तेज पड़ने लगती है। ड्योढी का गजर बज उठता है। लेकिन पालकी के अन्दर का दिन घण्टों की गिनती नहीं मानता।

वहाँ बारह बजना पुराने वक्त जैसा ही होता है।

पुराने समय में बारह जब ही बजा करते थे जब राजमहल के सिंह दरवाजे पर दरबार उठने का डंका बजा करता था। दरबार चंदन के पानी में नहावे जाया करते थे। छुट्टी के दिन की दुपहरी थी। जिन नौकरों की सेवा में था, वे सब खा-पीकर गहरी नींद ले रहे थे। मैं अकेला बैठा हुआ था। मेरे भीतर ही भीतर पालकी चल रही थी। कहार मेरे नमक पर पले हुए थे। मेरे ख्यालों के संसार में ही रास्ते तय भी किये गए थे कि पालकी किधर-किधर से गुजरेगी ?

उन रास्तों पर पालकी दूर-दूर तक गई। कई देशों में फिरती रही। उन देशों के नाम भी मैंने ही रखे

थे। रास्ता कभी सघन जंगल के बीच गुजरता। वहां बाघ की आंखें लपालप जल उठतीं। शरीर पर रोम-रोम खड़े हो जाते।

हमारी ख्याली दुनियां में उस वक्त हमारे साथ विश्वनाथ नाम का शिकारी भी होता। अचानक बंदूक छूटने की आवाज होती, बस फिर चारों ओर गहरा सन्नाटा छा जाता। कभी वही पालकी अपना भेस बदल लेती और मोर के पंख वाली नाव बन जाती। पानी में तैरने लगती। पानी छप-छप की आवाज करता। कहीं भी सूखा सा मैदान दिखाई नहीं देता। नदी में ज्वार उठते-गिरते दिखाई देते। नाव चलाने वाले एक साथ बोल पड़ते—'संभालो! संभालो तूफान आ गया है।'

नाव की पतवार के समीप अब्दुल नाम का मल्लाह रहता। उसकी दाढ़ी नोक वाली, सफाचट मूंछें और घुटा हुआ सिर था।

मैं उसे अच्छी तरह जानता हूं।' वह मेरे भाई साहेब की खातिर पदमा नदी से मछली और कछुए के अंडे लेकर आता था।

वह मुझे गप्पें सुनाया करता था। एक दिन गप्प सुनाने लगा—चैत के महीने के उतरते दिनों की बात है। एक दिन मछलियों को फंसाने के लिए गया। अचानक

तूफान घिर आया । नदी के पानी में नाव डूबने लगी । अब्दुल ने अपने दांतों से रस्सी को दबा ली और उस पानी में छलांग लगा ली । तैरता-तैरता वह ठहरे हुए पानी तक आ पहुंचा और नाव की रस्सी पकड़ कर सतह तक खेंच लाया ।

उसकी यह गप मुझे कतई अच्छी नहीं लगी, क्योंकि बहुत जल्दी खत्म हो गई । नाव पानी में डूबी ही नहीं और आसान तरीके से बच भी गई । यह भी कोई गप्प हुई । मैं उससे बार-बार पूछने लगा—'फिर क्या हुआ ?'

वह कहने लगा—'कुछ मत पूछो ! फिर क्या हुआ ? बहुत बड़ी घटना घटी । मैंने क्या देखा ? एक लकड़बग्धा मेरे किनारे पहुंचने से पहिले ही वहां पर था । उसके बड़ी-बड़ी मूछें थी । तूफान के आने के वक्त वह उस किनारे के घाट वाले पाकड़ पर चढ़ गया था । तूफान के अचानक किसी वेग ने उस पाकड़ को ही उखाड़ कर नदी के बहते पानी में धकेल दिया । लकड़बग्धा पानी के वेग में बहने लगा । विवशता की डुबकियां खाते हुए हांफने लगे, बड़ी मुश्किल से दियारे में आकर डटे । मेरी बाघ पर निगाह पड़ते ही गुन की रस्सी में फंदा डाल दिया ।

वह मेरी ओर आँखें फाड़-फाड़ कर देख रहा था ।

उसकी बड़ी-बड़ी आंखें मुझे खाने को घूर रही थीं। तैरते तैरते उसे भूख सताने लगी। वह मुझे देखते ही जीभ से लार टपकाने लगा उसे आज तक कितने ही इन्सानों से वास्ता पड़ा होगा। लेकिन अब्दुल माझी से पहले दफा ही पाला पड़ा था।

मैंने उसे ललकारते हुए कहा—'आजा बेटे!'

उसने जैसे ही अपनी टांगें उठाई, वैसे ही मैंने उसके गले में फंदा झुला दिया। अब वह अपना गला छुड़ाने के लिए तड़फने लगा। वह जितना ही छटपटाता मैं उतना ही फंदा कसता जाता और उसकी जीभ मुंह से कुछ और बाहर लटकने लगती।

उसकी बात सुनकर मैं बेचैन हो उठा। मैंने उससे सवाल किया—'अब्दुल। वह दम तोड़ बैठा क्या ?"

अब्दुल ने जवाब दिया—'वह इतनी आसानी से मरने वाला था क्या ? नदी में तेज बाढ़ आई हुई थी और मुझे बहादुरगंज तक का सफर तय करना था। मैंने भी एक काम किया। उस लकड़बग्घा को गुन में जोत लिया और कम से कम बीस कोस तक उससे नाव खिंचवायी। राह में वह पों-पों करता रहा लेकिन मैं भी रुक-रुककर उसके पेट में सरिये से खोंच लगाता रहा। दस-पन्द्रह घण्टे का सफर उसने डेढ़ घण्टे में ही पूरा कर लिया।

अब तुम उससे आगे की घटना के बारे में कुछ सवाल न करना। मैं उत्तर नहीं दे सकूंगा।

मैंने कहा—यह तो ठीक है। बाघ की बात तो पूरी हुई। अब घड़ियाल वाली घटना भी सुना दो?



अब्दुल कहने लगा—मैंने पानी के ऊपर उसकी नाक की नोंक को बाहर निकलते हुए कितनी ही दफा देखा है। जिस वक्त वह नदी के किनारे लम्बा पड़ा हुआ सूरज की रोशनी सेक रहा होता है, उस वक्त ऐसा लगता है जैसे बहुत भद्दी हंसी हंस रहा हो। बन्दूक पास में रहे

तो उससे लड़ाई लड़ी जा सकती है । किन्तु अपना तो लाईसेंस ही खत्म हो चुका ।

लेकिन उस दिन बहुत आनन्द आया कंची बंजारिन नदी के किनारे की बालू पर बैठी हुई दाव से बांस के फट्टे सजाने मे लगी हुई थी । उसका पठरू उसके पास में ही बंधा हुआ था ।

उसे पता भी न लग पाया, न जाने किस घड़ी घड़ियाल नदी के पानी से बाहर आया और पठरू की टांग खेंच कर पानी में घसीट कर ले गया । जब कंची बंजारिन ने देखा तो उससे न रहा गया । आव देखा न ताव, झटपट नदी में छलांग लगाई और घड़ियाल की पीठ पर जा बैठी फट्टा छीलने का दाव तो उसके पास था ही । वह तेजी के साथ घड़ियाल की लम्बी चौड़ी गरदन पर मार करने लगी । घड़ियाल ने पठरू को छोड़ दिया और पानी में डुबकी लगाली ।

मैं बेचैन हो उठा । मैंने अब्दुल से पूछा–फिर क्या हुआ ?

अब्दुल ने कहा–उसके बाद के समाचार पानी की सतह के नीचे डूब गये, वहां से निकाल कर लाने में बहुत वक्त लग जायेगा । जब तुमसे फिर भेंट करूंगा तो जानकारी कर ठीक-ठीक समाचार लेकर आऊंगा ।

किन्तु वह फिर कभी नहीं लौटा । हो सकता है वह खबर लेने गया हो !

राजर्षि

गुजुरपाड़ा ब्रह्मपुत्र के किनारे पर एक छोटा सा गांव हैं। गांव में छोटी सी बस्ती है, ज्यादह लोग नहीं रहते है। गांव के जमीदार का नाम पीताम्बर राय है। वे खुद को राजा कहा करते थे, गांव के लोग भी उनको राजा ही कहते थे।

उसी नदी के किनारे एक बहुत बड़ा महल भी था, जिसे किसी जमाने में त्रिपुरा के महाराजाओं ने तीर्थ-नहाने के लिए बनवाया था। कई साल बीत गये, लेकिन कोई भी राजा उस महल में आकर नहीं ठहरा। उस किनारे से आने-जाने वाले लोग उसे त्रिपुरा के राजाओं का महल कहते थे।

एक दफा भादवे के महीने में सारे गांव में खबर फैल गई कि इस बार त्रिपुरा के राजकुमार नदी किनारे

वाले महल में रहने के लिए आ रहे हैं। गांव में हलचल मच गई।

कुछ दिनों बाद अनेक पगड़ीधारी लोग आ पहुंचे। धूम सी मच गई। राजकुमार के रहने के लिए तैयारियां होने लगीं। सात दिन बाद गांव में हाथी-घोड़ों का जुलूस आया। अनेक नौकर-चाकर थे। कई तरह का सामान था। गांव वाले उस ठाट-बाट को देख कर दंग रह गये। वे आज तक पीताम्बर राय को ही राजा समझते थे लेकिन आज किसी को भी अपने राजा का ध्यान तक न था। राजकुमार का नाम नक्षत्रराय था। उसे देखकर सभी ने कहा—'राजा तो यह है।' पीताम्बर राय ने भी नक्षत्रराय को राजा माना और उसकी सेवा में लग गये। वे किसी न किसी तरह भेंट लेकर राजा के पास जा पहुंचते। जब कभी नक्षत्रराय हाथी पर सवार होकर बाहर निकलते तो पीताम्बरराय अपने गांव के लोगों के सामने पुकार-पुकार कर कहते—"राजा देखा है? वह देखो, राजा है।" धीरे-धीरे जनता ने नक्षत्रराय को ही राजा मान लिया। पीताम्बरराय भी जनता में ही शामिल हो गये।

रोजाना दिन में तीन बार नौबत बजने लगी। गांव की राहों पर हाथी और घोड़े चलने लगे। राज-

महल के बाहर पहरेदार नंगी तलवार हाथ में लेकर खड़े रहने लगे। दुकानें लगने लगीं। सारी जनता बेहद खुश थी। वे सभी अपने सारे दुःख दर्द भूल गये। राजा नक्षत्रराय जनता से बेहद सुखी थे। यहां के राज-काज में किसी तरह का झगड़ा झंझट नहीं था। दूर-दूर से नाचने वालियों का बुलाया जाने लगा। नौकरो ने भी अपने नये-नये नाम रख लिय। कोई अपने को मंत्री कहता तो कोई सेनापति। पीताम्बरराय ने भी अपना नाम दीवानजी रख लिया।

राजा का बाकायदा दरबार जुड़ने लगा। एक दफा नकुड़ ने शिकायत की कि—"माथुर ने मुझे कुत्ता कहकर बुलाया।" बाकायदा सुनवाई हुई। आखिर फैसला सुनाया गया कि–"नकुड़ माथुर के दो दफा कान खच दे।" इस तरह दरबारी कामकाज चलने लगा। जानवरों की शादी के खेल होने लगे। एक दिन राजमहल में बिल्ली के बच्चे की शादी थी। हल्दी चढ़ाने आदि की सारी रिवाजें पूरी की गईं सांझ के वक्त सभी जगह रोशनी की गई। नौबत बजी। बारात रवाना हुई। दुल्हा पालकी में बैठा हुआ म्याऊं म्याऊं करता रहा। एक लड़का दुल्हे के साथ पालकी में बैठा हुआ था जो हाथ में रस्सी थामे हुए था। रस्सी बिल्ली के बच्चे के गले में झूल रही थी।

पुरोहित केनाराम थे। लेकिन राजा ने उसका नाम वदल कर रघुपति रख दिया था। वे इस नाम से बहुत डरते थे। वारात के दिन केनाराम उर्फ रघुपति गैर हाजिर था। क्योंकि उसके लड़के को तेज बुखार चढ़ गया था। राजा ने पूछा—"रघुपति कहां है ?"

नौकर ने कहा-"उसके घर में कोई बीमार है।"

राजा ने तेज आवाज में कहा-'उसे बुलाओ।'

नौकर दौड़ पड़ा। इस बीच नाच गान होता रहा। कुछ देर बाद नौकर ने कहा-"रघुपति आये है।"

नक्षत्रराय ने रोष के साथ कहा-बुलाओ!

पुरोहित को देखते ही नक्षत्रराय का गुस्सा ठण्डा हो गया, माथे पर पसीना आ गया। गाना बजाना एक-दम बन्द हो गया। रघुपति राजा के सामने छाती फुला कर खड़े हो गये और बोले—"नक्षत्रराय!" नक्षत्रराय चुप रहे।

रघुपति बोले—"तुमने रघुपति को बुलाया है। लो मैं आ गया।"

रघुपति बोले-'उठ जाओ!'

नक्षत्रराय धीरे-धीरे उठकर दरबार से चले गये। बिल्ली के बच्चे के ब्याह का कार्यक्रम रुक गया।

रघुपति ने राजा से पूछा—"वह सब क्या हो रहा था।"

राजा ने सिर खुजा कर कहा—"नाच हो रहा था।"

रघुपति ने कहा—"छी छी ! कल यहां से रवाना होना है। तुम राजघराने में जन्मे हो, तुम्हारे सभी पुरखों ने राज ही किया है और तुम हो कि इस जंगली गांव में गीदड़ की तरह राजा बने बैठे हो।"

राजा ने कहा—"दीवानजी से पूछ लेता। मेरे ये सामान भी........"

रघुपति ने कहा—"नहीं इनकी कोई जरूरत नहीं है।"

रुपये-पैसे भी मेरे पास है। आज सो जाओ, कल सवेरे ही रवाना होना है।"

राजा का जवाब सुने बिना ही रघुपति वहां से चले गये।

दूसरे दिन नक्षत्रराय ने रघुपति से कहा—"ठाकुर मुझे माफ करदो ! मैं कहीं जाना नहीं चाहता। मैं यहीं ठीक हूं।" रघुपति ने टेढी निगाह से देखा।

नक्षत्रराय ने कहा—"मैं भैया के खिलाफ किसी चक्र को नहीं चलाऊंगा। वे मुझे बहुत प्यार करते हैं।"

पुरोहित केनाराम थे। लेकिन राजा ने उसका नाम बदल कर रघुपति रख दिया था। वे इस नाम से बहुत डरते थे। बारात के दिन केनाराम उर्फ रघुपति गैर हाजिर था। क्योंकि उसके लड़के को तेज बुखार चढ़ गया था। राजा ने पूछा—"रघुपति कहां है?"

नौकर ने कहा–"उसके घर में कोई बीमार है।"

राजा ने तेज आवाज में कहा–'उसे बुलाओ।'

नौकर दौड़ पड़ा। इस बीच नाच गान होता रहा। कुछ देर बाद नौकर ने कहा–"रघुपति आये हैं।"

नक्षत्रराय ने रोष के साथ कहा–बुलाओ!

पुरोहित को देखते ही नक्षत्रराय का गुस्सा ठण्डा हो गया, माथे पर पसीना आ गया। गाना बजाना एक-दम बन्द हो गया। रघुपति राजा के सामने छाती फुला कर खड़े हो गये और बोले—"नक्षत्रराय!" नक्षत्रराय चुप रहे।

रघुपति बोले—"तुमने रघुपति को बुलाया है। लो मैं आ गया।"

रघुपति बोले–'उठ जाओ!'

नक्षत्रराय धीरे-धीरे उठकर दरबार से चले गये। बिल्ली के बच्चे के ब्याह का कार्यक्रम रुक गया।

रघुपति ने राजा से पूछा—"वह सब क्या हो रहा था।"

राजा ने सिर खुजा कर कहा—"नाच हो रहा था।"

रघुपति ने कहा—"छी छी ! कल यहां से रवाना होना है। तुम राजघराने में जन्मे हो, तुम्हारे सभी पुरखों ने राज ही किया है और तुम हो कि इस जंगली गांव में गीदड़ की तरह राजा बने बैठे हो।"

राजा ने कहा—"दीवानजी से पूछ लेता। मेरे ये सामान भी........"

रघुपति ने कहा—"नहीं इनकी कोई जरूरत नहीं है।"

रुपये-पैसे भी मेरे पास है। आज सो जाओ, कल सवेरे ही रवाना होना है।"

राजा का जवाब सुने बिना ही रघुपति वहां से चले गये।

दूसरे दिन नक्षत्रराय ने रघुपति से कहा—"ठाकुर मुझे माफ करदो ! मैं कहीं जाना नहीं चाहता। मैं यहीं ठीक हूं।" रघुपति ने टेढी निगाह से देखा।

नक्षत्रराय ने कहा—"मैं भैया के खिलाफ किसी चक्र को नहीं चलाऊंगा। वे मुझे बहुत प्यार करते हैं।"

पुरोहित केनाराम थे। लेकिन राजा ने उसका नाम बदल कर रघुपति रख दिया था। वे इस नाम से बहुत डरते थे। बारात के दिन केनाराम उर्फ रघुपति गैर हाजिर था। क्योंकि उसके लड़के को तेज बुखार चढ़ गया था। राजा ने पूछा—"रघुपति कहां है ?"

नौकर ने कहा—"उसके घर में कोई बीमार है।"

राजा ने तेज आवाज में कहा—'उसे बुलाओ।'

नौकर दौड़ पड़ा। इस बीच नाच गान होता रहा। कुछ देर बाद नौकर ने कहा—"रघुपति आये हैं।"

नक्षत्रराय ने रोष के साथ कहा—बुलाओ !

पुरोहित को देखते ही नक्षत्रराय का गुस्सा ठण्डा हो गया, माथे पर पसीना आ गया। गाना बजाना एक-दम बन्द हो गया। रघुपति राजा के सामने छाती फुला कर खड़े हो गये और बोले—"नक्षत्रराय !" नक्षत्रराय चुप रहे।

रघुपति बोले—"तुमने रघुपति को बुलाया है। लो मैं आ गया।"

रघुपति बोले—'उठ जाओ !'

नक्षत्रराय धीरे-धीरे उठकर दरबार से चले गये। बिल्ली के बच्चे के ब्याह का कार्यक्रम रुक गया।

पीताम्बर ने रोष के साथ कहा—"तुम कौन हो ? हमारे महाराज पर हुकुम चलाने आये हो ?"

नक्षत्रराय परेशान हो उठे। पीताम्बर से बोले—"ये हमारे गुरु ठाकुर हैं।"

पीताम्बर भभक उठे—"होंगे गुरु ठाकुर ! इस तरह क्या करते हैं ?"

रघुपति ने फिर कहा—'वक्त बेकार बरबाद हो रहा है। फिर, मैं तो चला।"

पीताम्बर ने कहा—जो हुकुम। देर करने से फ़ायदा भी क्या। आप पधारें महाराज को लेकर मैं महल में जा रहा हूं।"

पीताम्बर ने कहा—"फिर तो मै भी चला। अपने लोग-बाग अपने साथ ले लें। राजा जायेंगे तो साथ-साथ दीवान कैसे नही जायेगा।"

रघुपति ने कहा—"साथ कोई नही जायगा।"

पीताम्बर बोले—"देखो ठाकुर, तुम......."

नक्षत्रराय ने हड़बड़ाकर कहा—"दीवानजी, मैं जाता हूं, देर हो रही है।"

पीताम्बर दुःखी हो गये और नक्षत्र का हाथ पकड़ कर बोले—देखो, मैं तुम्हें राजा कहता हूं, लेकिन अपने लड़के

रघुपति ने कहा—"वाहरे प्यार ! तुम्हें राज्य से भगा दिया और युवराज पद पर ध्रुव को बिठा दिया। नादान कहीं के !

नक्षत्रराय ने कहा—"लेकिन मैं क्या कर सकता हूं

रघुपति बोले—"उसी उपाय की तो बात हो रही है। मेरे साथ चलो। नक्षत्रराय ने दीवानजी को अपने साथ ले चलना चाहा लेकिन रघुपति ने एक भी न सुनी। नाव तैयार थी। नदी के किनारे नक्षत्रराय ने कहा— पीताम्बर कंधे पर अंगोछा डाले नहाने आ रहे हैं। पीताम्बर ने महाराज की जय-जयकार करते हुए कहा—"कल कोई पाजी आ धमका, जिसने विघ्न कर दिया।"

रघुपति ने कहा—"वह पाजी मैं ही हू।"

पीताम्बर हंस पड़े। उससे पूछा—महाराजा, इतने सवेरे-सवेरे नदी किनारे कैसे ?

नक्षत्रराय ने धीमे से कहा—"मैं चला दीवानजी। दूर, बहुत दूर जा रहा हूं।"

पीताम्बर बोले—"बहुत दूर ? तो क्या शिकार के लिए जा रहे हैं ?"

रघुपति ने कहा—"वक्त निकलता जा रहा है। नाव में बैठ जायें !"

पीताम्वर ने रोष के साथ कहा—"तुम कौन हो ? हमारे महाराज पर हुकुम चलाने आये हो ?"

नक्षत्रराय परेशान हो उठे । पीताम्बर से बोले—"ये हमारे गुरु ठाकुर हैं।"

पीताम्वर भभक उठे—"होंगे गुरु ठाकुर ! इस तरह क्या करते हैं ?"

रघुपति ने फिर कहा—'वक्त बेकार वरबाद हो रहा है । फिर, मैं तो चला ।"

पीताम्वर ने कहा—जो हुकुम । देर करने से फायदा भी क्या । आप पधारें महाराज को लेकर मैं महल में जा रहा हूं ।"

पीताम्वर ने कहा—"फिर तो मैं भी चला । अपने लोग-वाग अपने साथ ले लें । राजा जायेंगे तो साथ-साथ दीवान कैसे नही जायेगा ।"

रघुपति ने कहा—"साथ कोई नहीं जायगा ।"

पीताम्वर बोले—"देखो ठाकुर, तुम········ ।"

नक्षत्रराय ने हड़वड़ाकर कहा—"दीवानजी, मैं जाता हूं, देर हो रही है ।"

पीताम्वर दुःखी हो गये और नक्षत्र का हाथ पकड़ कर बोले—देखो, मैं तुम्हें राजा कहता हूं, लेकिन अपने लड़के

की तरह प्यार करता हूं। मेरी अपनी कोई औलाद नहीं है। तुम जा रहे हो, जाओ। लेकिन मेरा एक अनुरोध है कि कहीं भी जाओ, मेरे मरने के पहले एक दफा लौटकर जरूर आना। मेरी अब एक ही इच्छा रही है कि मैं अपने हाथों से अपना सारा राजपाट तुम्हारे हाथ में सौंप जाऊं।"

नक्षत्रराय और रघुपति नाव पर सवार हो दक्षिण की ओर चले गये। पीताम्बर नहाना-धोना भूल गये। गुजुरपाड़ा सूना हो गया। सारा शहर फिर से उजड़ गया। केवल नदी की धारा बह रही थी।



फूल



फूलों का घर बड़ा मुलायम, होगा कहाँ ?
क्या धरती के आस-पास ये नहीं रहते हैं ?
मेरे भैया कहते—"मालूम मुझे फूलों का घर"
क्या यह सच है ? फूल आसमान पर रहते हैं ?

आसमान पर गहरा भूरा और काला
घूमा करता है रंग-बिरंगा बादल ।
क्या हवा वहीं से आती है, आता है उजाला,
माली ! क्या यह सच ? आते हैं चोरी से निकल ?

———

कल तक जो डाली, खाली-खाली थी,
आज अचानक फूलों से हरी-भरी है।
माली ! तुम मुझको इतना सा बतला दो,
किसने फूल जड़े हैं, यह कैसी जादूगरी है ?

पेड़ के भीतर ये छिपकर रहते क्यों ?
भीतर से ही रहता इनका आना-जाना !
माली ! तुम मुझको इतना सा बतला दो,
मुंह ढक कर सोने वाले इनका क्या पता-ठिकाना ?

सावधान से पर कोने में दुबके-दुबके
रहते हैं खड़े, कान खड़े हो जैसे,
हवा बुलाती इनको चुपके-चुपके
उसके मन की सुन लेते हैं, जाने कैसे ?

बात हवा की सुन, ठहर नहीं पाते,
जल्दी-जल्दी मुंह धोते, सजने-धजने।
माली ! तुम मुझको इतना सा बतला दो,
क्यों रंग सजाते घर को छोड़, बाहर भागने ?

फूलों का घर बड़ा मुलायम, होगा कहाँ ?
क्या धरती के आस-पास ये नहीं रहते है ?
मेरे भैया कहते—"मालूम मुझे फूलों का घर"
क्या यह सच है ? फूल आसमान पर रहते है ?

आसमान पर गहरा भूरा और काला
घूमा करता है रंग-बिरंगा बादल ।
क्या हवा वहीं से आती है, आता है उजाला,
माली ! क्या यह सच ? आते हैं चोरी से निकल ?

———

रात

उजाले के तार सिमेट कर,
अंधेरा ओढ़ कर रात आई ।

उषा पूरब में लगी हंसने,
सभी जगी आंखें लाल हुई ।
अंधेरा ओढ़ कर रात आई ।।

किसी ने उस पार से अचानक
चांद आने, की आवाज लगाई ।
अंधेरा ओढ़ कर रात आई ।।

सुन पुकार किसी की, चांद आया,
सहमी-सहमी सी चांदनी चली आई ।
अंधेरा ओढ़ कर रात आई ।।

दिये जल गये, बात करने लगे,
कानाफूसी बाती भी करने लग गई ।
अंधेरा ओढ़ कर रात आई ।।

आकाश में जग रहे हैं सितारे,
सितारों की सभा वहां जुड़ गई।
अंधेरा ओढ़ कर रात आई ॥

रास्ता भूल कर जुही-मोतियां
उतरे फूल पर, बात जम गई।
अंधेरा ओढ़ कर रात आई ॥

हवा हर ओर घूमे, फिरे जैसे
सभी को न्योता देने आ गई।
अंधेरा ओढ़ कर रात आई ॥

जंगल में पछी गीत गा रहे,
रंगों में बदरिया घिर गई।
अंधेरा ओढ़कर रात आई ॥

पानी की लहर-लहर झूमे,
डाल-डाल पर कली खिल गई।
अंधेरा ओढ़ कर रात आई ॥

दस बजे की चाह

दस बजते ही स्कूल जाने निकलता हूं,
अपने घर वाली गली से गुजरता हूं।
रोज मिला करता है मुझको, फेरी वाला,
वह झल्ला कर चिल्लाता, मैं सुनता हूं॥

उसकी थैली में रहते रंग बिरंगे पुतले,
वह चिल्लाता—'कोई चीनी के पुतले ले ले!'
हर बार लगाता आवाज नई, कोई ले ले,
नये खिलौने ले ले, चूड़ी ले ले, बुत ले ले!

जी चाहता उधर हो चल देता डगर पर,
कभी इधर को, कभी उधर को, घर-घर,
फिरता रहता मनमानी गलियों से गुजर,
वह फेरी वाला, फेरी को सिर पर धर कर।

वह आजाद बहुत है, मनमानी करता रहता,
जब जी में आता, तब घर जा खाना खाता रहता।
दस बजते हों या ग्यारह बजते हों कभी,
बेफिक्र सदा, देरी या जल्दी में नहीं रहता।

देख उसे मेरा मन भी हरदम कहता
'बस्ता स्लेट पटक कर तू भी ऐसे रहता।'
जब चाहे तब निकलूं घर से मैं भी,
काश! फेरी लेकर डगर-डगर पर फिरता।।



चार बजे की चाह



चार बजने पर लौटता हूं, मैं,
स्याही में डूबा हुआ मैं।
हाथ स्याही से हुए काले
मुंह पर भी धब्बे लिए मैं,
चार बजने पर लौटता हूं मैं।

राह में माली को देखता हूं मैं,
गली से गुजरता हुआ मैं।
फूल वारी में खड़ा हो वह
मिट्टी खोदता, देखता हूं मैं,
चार बजने पर लौटता हूं मैं।

हाथ में उसके होती कुदाली,
देखता हूं स्कूल से आता हुआ मैं,
कहीं पांव पर घाव करदे न कुदाली
देख उसको, सोचता हूं मैं।
चार बजने पर लौटता हूं मैं।

धूप से नहाया तन देखता हूं
चुपचाप रहता हुआ देखता हूं मैं,
कभी बक-झक नहीं करत किसी से
साधु सरीखा उसे मानता हूं मैं।
चार बजने पर लौटता हूं मैं।

मां उसे पहनाती नहीं धोये कपड़े
धूप में डूबा हुआ, देखता हूं मैं,
देख उसको, मन यहीं कहता—
'माली बन जाऊँ, सोचता हूं मैं।
चार बजने पर लौटता हूं मैं।

सोने से पहले

कुछ रात हुई ।
मां ने लोरी गाई ।
नींद जल्दी से आ,
मुझे को नींद न आई ।।

माँ पास बुलाती, पर नींद मुझे नहीं आती ।
सोने से पहल पहरेदार को आवाज जगाती ।

झटपट-उठकर
खिड़की से देखा करता ।
पगड़ी बांधे, पहरे वाला,
रात को पहरा देता ।।

अंधियारी गली में कोई भी नहीं आता जाता ।
केवल पहरे वाला जोर-जोर से आवाज लगाता ।

लटकाये लालटेन को
गली-गली, गश्त लगाता
कभी रुक जाता, बढ़ जाता,
पहरे वाला गश्त लगाता।

सुनसान सी राहों पर एक अकेला बढ़ जाता
सब घर सो जाते, उसका घर जाग जगाता।

जब ग्यारह-बारह बज जाते
रात-अँधेरा गहरा हो जाता।
वह मन ही मन बतियाता
कोई उसकी बात न सुन पाता।

देख उसे मन कहता—"पहरे वाला बन जाता।"
तू भी गलियों में आवाज लगाता, जागा फिरता।

डर



वह डरता है हरदम
डर घेरे रहता है उसे।
डरता खूब उजाले से,
डरता घने अंधियारे से।
डर है उसे बाहर-भीतर से,
डरता है वह हर चीज से।
डरता है औरों के डर से,
डर है उसे अपने ही डर से।

डरता है वह जितना तोते से
उतना ही डर है उसे दाड़िम से।
डरता है जितना चकाचौंध से
उतना ही डर है मंद उजाले से।
पूरब से डरता, पश्चिम से डरता,
देखे जिधर, डर हैं उसे उधर से,
डर ही डर है, डरता डर से,
पिण्ड न छूटे, जालिम डर से ॥

अपने घर से ही डर है उसे
डर लगता ईंटों से, दीवारों से।
थर-थर कांपे, डरता है ऐसे
जैसे मुजरिम डरता हाकिम से।
औरों के घर से डर है उसे,
डर है आंगन के भीतर-बाहर से।
डर के मारे कंपोकंपी छूटे ऐसी,
जैसे कांपता हो कोई बर्फ से।।

डर है भूतों की बातों से उसे
डरता है प्रेत-पिशाच के नाम से
डर है तन्तर-मंतर के नाम से
डर है उसे किसी भी काम से।
दिन के उजाले में डर है उसे
हर अगले की दीठ से।
रात के अंधियारे में उसे
डर लगता है अपनी ही पीठ से।।

वह डरता है हरदम
डर घेरे रहता है उसे।
डरता खूब उजाले से,
डरता घने अंधियारे से।
डर है उसे बाहर-भीतर से,
डरता है वह हर चीज से।
डरता है औरों के डर से,
डर है उसे अपने ही डर से।

डरता है वह जितना तोते से
उतना ही डर है उसे दाड़िम से।
डरता है जितना चकाचौंध से
उतना ही डर है मंद उजाले से।
पूरब से डरता, पश्चिम से डरता,
देखे जिधर, डर हैं उसे उधर से,
डर ही डर है, डरता डर से,
पिण्ड न छूटे, जालिम डर से ।।

अपने घर से ही डर है उसे
डर लगता ईंटो से, दीवारों से।
थर-थर कांपे, डरता है ऐसे
जैसे मुजरिम डरता हाकिम से।
औरों के घर से डर है उसे,
डर है आंगन के भीतर-बाहर से।
डर के मारे कंपोकंपी छूटे ऐसी,
जैसे कांपता हो कोई बर्फ से॥

डर है भूतों की बातों से उसे
डरता है प्रेत-पिशाच के नाम से
डर है तन्तर-मंतर के नाम से
डर है उसे किसी भी काम से।
दिन के उजाले में डर है उसे
हर अगले की दीठ से।
रात के अंधियारे में उसे
डर लगता है अपनी ही पीठ से॥

मेरे देश की मिट्टी

ओ मेरे देश की मिट्टी,
मैं तुम पर सिर नवाता हूं।
तुम्हीं पर विश्व-माता का,
आंचल बिछा हुआ देखता हूं।।

मां तुम मेरे तन-वदन में घुली है,
मां, तुम मेरे प्राण-मन में मिला है।
तेरी सांवली सुकुमार मूरत,
मर्म से गूंथी, एकता में देखता हूं।।

मां, तेरी कोख में जन्म मेरा हुआ,
तेरी ही गोद में मरण मेरा होगा।
तुझ पर निर्भर है दुःख का झमेला,
तुझ में सुख का आमोद देखता हूं।।

मां, तुम्हीं ने मेरे मुंह में कौर दिया
तुम्हीं ने शीतल जल से तृप्त किया।
तुम्हारे ही भीतर सर्व सहा मां का–
सुन्दर रूप, मैं मुख से देखता हूं।।

तेरा दिया बहुत कुछ भोगा है मैंने,
ओ मां! बहुत कुछ तुम से लिया है मैंने।
फिर भी न कह सकूंगा, कभी–
कौन से प्रतिदान का फल भोगता हूं।।

मैंने गंवाये हैं व्यर्थ में मेरे ही दिन,
मैंने खोये हैं नंद धाम में मेरे ही दिन।
ओ शक्ति दायिनी! सर्व सहा जननी!
व्यर्थ ही मिली मुझे शक्ति, देखता हूं।

———

मोती झील

पानी दूर बहुत है, पर
नाम है उसका, मोती झील।
लहर-लहर पर तिरते हंस
करते हैं मीठा कोलाहल ॥

दलदल पर बगुले खड़े हैं
टकटकी लगाये, ऐसी है झील।
पंखों को लहराती हवा में
झील से उड़ती जाती चील ॥

तीर सरीखे गिरें किलकिलें
लक्ष्य सफल करलें : झील।
पानी दूर बहुत है, पर
नाम है उसका मोती झील ॥

घास भरे झांक रहे दियारें,
बीच-बीच में बहती धारें।

पानी दूर बहुत है पर
नाम है उसका मोती झील ।।

इधर-उधर पानी का वहाव,
खेतों में भी पानी का पड़ाव ।
फसलें डूबी कमर–कमर तक,
कुछ डूबी, कुछ अध डूबी घुटनों तक ।।

ज्यों धूप चढ़े, त्यों रूप चढ़े,
डोंगी पर चढ़, आये किसान ।
खेतों में झूम-झूम गायें गान,
हंसिया ले काटें पका धान ।।

सांझ पड़े, लौट चलें किसान,
भैंसों के संग चरवाहों के लड़के ।
बांसों के फंदे में फांस रहे
मछली, मछुवारों के भोले लड़के ।।

आसमान में बादल बहते जांय,
पानी में घासों के ढेर बहते जांय,
पानी दूर बहुत है, पर
नाम है उसका मोती झील ।।

मोती झील

पानी दूर बहुत है, पर
नाम है उसका, मोती झील ।
लहर-लहर पर तिरते हंस
करते हैं मीठा कोलाहल ।।

दलदल पर बगुले खड़े हैं
टकटकी लगाये, ऐसी है झील ।
पंखों को लहराती हवा में
झील से उड़ती जाती चील ।।

तीर सरीखे गिरे किलकिलें
लक्ष्य सफल करले : झील ।
पानी दूर बहुत है, पर
नाम है उसका मोती झील ।।

घास भरे झांक रहे दियारे,
बीच-बीच में बहती धारें ।

पानी दूर वहुत है पर
नाम है उसका मोती झील ।।

इधर-उधर पानी का बहाव,
खेतों में भी पानी का पड़ाव ।
फसलें डूबी कमर—कमर तक,
कुछ डूबी, कुछ अध डूबी घुटनों तक ।।

ज्यों धूप चढ़े, त्यों रूप चढे,
डोंगी पर चढ़, आये किसान ।
खेतों में झूम-झूम गायें गान,
हंसिया ले काटें पका धान ।।

सांझ पड़े, लौट चलें किसान,
भैंसों के संग चरवाहों के लड़के ।
बासों के फंदे में फांस रहे
मछली, मछुवारों के भोले लड़के ।।

आसमान में बादल बहते जांय,
पानी में घासों के ढेर बहते जांय,
पानी दूर बहुत है, पर
नाम है उसका मोती झील ।।

———

मेह बरसता

बूझ गया दिन का उजियारा
अब–तब सूरज चला डूबने।
आसमान के महा नगर पर
चांद–लोभी से बादल लगे दीखने ।।

बादल पर बादल यूं घिर आये,
जैसे रंगों पर रंग चढ़ जाये।
मन्दिर–मन्दिर में कांसे के घण्टे
मानो एक साथ हो बज जाए।

रिमझिम–रिमझिम मेंह बरसे
उस पार के झाड़ी-झुरमुट सरसे
इस पार घिरे हैं रतनारे बादल
जैसे सिर पर विपदाएं गहरे ।।

जलव्यारी में मन रम जाता है
बचपन का गीत उभरता मुख पर
मेह बरसता टुपुर-टुपुर,
नदिया का पूर उफान पर ॥

सारे आकाश में बादल खेल रहे,
यहां, वहां, सीमा का नाम नहीं कोई ।
गांव-गांव, शहर-शहर में घूम रहे
मना करने का काम नहीं कोई ॥

मेह का पानी बहुत मधुर है,
पीकर इसको, फल जिन्दगी जीते ।
बून्दें मेह की, नये-खेल रचाती
पल-पल ये चतुराई दिखलाते ॥

बादल के खेल देख-देख कर
यादों में मेरे खेल उमड़ आते ।
दुबके खयाल फिर से खड़े हो-हो
मन के आंगन में दौड़ लगाते ॥

बचपन फिर आता मेह के संग
गाने गूंज उठते मन के तारों पर ।

मेह बरसता टुपुर–टुपुर,
नदिया का पूर उफान पर ।।

मां का हंसना, याद मुझे आता,
घर में उजियारा भर जाता ।
बादलों की दहाड़ आती याद,
दिल थर–थर कांपने लगता ।।

मां के बिस्तर पर कोंने में
नन्हा सा लल्ला सोया रहता ।
उसके ऊधम–फैल का हरदम
मां के पास हिसाब पूरा रहता ।

घर में नटखट लड़के की
धमा चौकड़ी शोर मचाती रहती ।
बाहर बादल गरज उमड़ते
दुनियां सारी कांप सहमती ।।

फिर से मन आज मचलता मेरा
मां मुझको वह मीठा गीत सुनाये ।
मेंह बरसाता टुपुर–टुपुर,
नदिया का पूर उफान पर ।।

आती याद कहानी सुहागो रानी की,
याद आ रही बात दुहागी रानी की।
याद सताती मुझको हरदम
सती कंकावती की मान भरी कहानी की ।।

दिये की टिमटिम लौ याद आ रही,
काला-काली छाया याद आ रही ।
बाहर मेह की झुप-झुप याद आ रही,
सुन पूरी कहानी चुप्पी याद आ रही ।

नटखट लड़का हुआ सयाना,
पर मन उसका बेचैन हुआ ।
लगे तार बजने मन के चुपके से
बादल-दिन के गीत गाता हुआ ।।

कब रिम-झिम रिमझिम मेंह बरसा,
कहां नदिया में आया उफान ?
शिव बाबा ने कब ब्याह रचाया,
यह सब किस युग का है गान ?

उस दिन भी क्या इसी तरह था ?
घनघोर घटाओं का जाल बिछा था ?

उस दिन भी क्या आकाशी छत पर
बिजली की आंखों में कोप चढ़ा था ?

आखिर फिर क्या हुआ भला
तीनों कन्याएं शादी रचाकर,
मालूम नहीं, किस देश में जीने
किस नदिया के तट पर ?

किस मुन्ने को निंदिया आता
किस माँ के इस गान पर ?
मेह बरसता टुपुर-टुपुर,
नदिया का पूर उफान पर ।

जन्म की सार्थकता

इस देश में मेरा जन्म हुआ,
जन्म हुआ, जीवन सार्थक हुआ ।
मां ! तुमको नम-सन प्रेम करे,
मां ! मेरा सार्थक जन्म हुआ ।

रत्न तुम्हारे चमक रहे कैसे,
पता नहीं, किसी रानी जैसे ।
ज्ञात मुझे इतना ही तेरी छाया में—
जुड़कर मेरा तन सफल हुआ ।

ज्ञात नहीं, किस उपवन के सुमन
करते हैं मन को गंधा-विभोर,

कैसा आकाश यहां, चांद उगे हंस के,
मां ! मेरा जीवन सफल हुआ ।

जन्म लिया तो तेरे शीतल उजियारे से
आंख खुली पहली-पहली मेरी ।
उसी उजारे में मूंदूंगा अन्तिम आंखें
मां ! उजियारे में सार्थक जन्म हुआ ।

बड़ा पुराना यह नौकर



भूत सरीखा, मुँह है फीका
अक्कल में पूरा अवधूत है ।

कुछ भी खोले, धरती वाले–
सुनते हो इसकी करतूत है ॥

सोये तब भी गाली बकता
जगता, क्या-क्या नहीं बकता ?
सुन-सुन कर भी अनसुनी कर
जो चाहता जो हरदम करता ।

बात-बात पर बेंतें खाता
कभी-कभी तो वेतन भी न पाता ।
इतना ढीठ हुआ, मत पूछो,
इतने पर भी संभल नहीं पाता ।

हमको उसकी बड़ी जरूरत
उसके बिना हुई हाय बुरी गत ।
हम चीख रहे किसना! किसना!
अरे कहा मर गया, कैसी आफत?

एक चीख जो भी उत्तर नहीं पाया,
कसमें खाकर भी वह नहीं आया ।

चाहो तो खोज करो कितनी ही
नहीं मिल पाये, पूरे देश भर ।।

नौकर क्या है ? बस एक नमूना है,
तीन देकर मांगों तो एक ही मिलता है ।
गर एक उसे दो, पल भर में मांगों,
एक नहीं, टुकड़े-टुकड़े कर लाता है ।।

जी चाहता, वहीं पड़ जाता हरदम,
ठौर ठिकाना देखे बिना सो जाता वह ।
सोता है जब, खर्राटें भरता रहता,
तब शहर जागता, पर वह सोता रहता ।

"पाजी सूअर" की गाली सुन-सुन,
थके बदन पर घूंसे चोटें धुन-धुन,
उसे जगाते, पर उठने का नाम न लेता
जब जगता तो ही-ही करता रहता ।

खड़ा द्वार पर वह हंसता रहता ।
बे इज्जत हो कर भी उस घर में रहता ।
छोड़ न पाया माया की ममता को
बड़ा पुराना नौकर या अवधूत है ।

धूप

आसमान की गोद में धूप हंसी है,
देख उसे बादल भाग गये दूर।
आज हमारी मनभावन छुट्टी है,
आज हमें मिल पाई छूट भरपूर।।

बादल भाग गये दूर।।

आज क्या करें, सोच न पायें,
राह भुला किस डगर को जायें,
सब लड़के मिल कर हम,
किस पांतर में भटक-भटक हों चूर।

बादल भाग गये दूर।।

केवड़ा के पतों की नांव सजाई,
फूलों से सजावट की अनमोल,
गहरे जल में नांव तिरायेंगे।
धीरे-धीरे चल देगी डोल मडोल

चरवाहों के संग हम गाय चरायें,
जंगल में हम बांसुरी खूब बजायें,
जी भर कर चंपा वन में लोट लगायें,
अंग-अंग में रसजाये फूल की धूर॥

बादल [illegible] नहीं दूर।

मेरा घर

यहां, वहां, सभी जगह,
अपने घर ही घर हैं।
इतने घर, जगह-जगह,
सभी कहीं मेरा घर है।
मैं अपना घर खोज नहीं लूंगा।

दुनियां में देश बहुत हैं
देशों में अपना देश है।
इतने देश जगह-जगह
सभी कहीं मेरा देश है।
मैं अपना देश लड़कर ले लूंगा।

मैं परदेशी, जाता जिस द्वार
वहीं महल में ठौर बनाता
घर में घुसने की चिंता बेकार
हर घर को अपना ही बनाता।
मैं घर में पग भीतर धर लूंगा।

ताड़ का पेड़

पेड़ों में बहुत बड़ा
एक टांग पर खड़ा

लम्बा ताड़ देख रहा आकाश।

उसकी इच्छा बहुत बड़ी
आँखें ऊपर को हैं अड़ी

काले बादल को देख रहा आकाश।

बादल के टुकड़े-टुकड़े कर
उड़ जामे बहुत ऊपर

चाहता, पंखे दान करे आकाश।

ठीक माथे के ऊपर
गोल-गोल पत्तों पर

मन की चाह देख रहा आकाश।

जपता हरदम सपना,
उड़ जाना वही माना,

छोड़ छाड़के घरबार, चलें आकाश ॥

झोंको के पड़ते ही बन्द
झंपना हो जाता है बन्द

घर को मुड़ आता, दूर रहा आकाश ॥

ताड़ सोचता, मिट्टी मेरी माता
इसका कणकण प्यारा लगता

धरती को देखे, खुद आकाश ॥



छोटा श्रौर बड़ा

छोटा हूं तो क्या ? मैं भी बड़ा बनूंगा ।

श्रब भी मैं तो बड़ा नहीं हो पाया,
लड़का हूं, सब मुझे छोटा कहते;
लेकिन इससे क्या ? एक दिन
मैं भैया से भी बहुत बड़ा हो लूंगा ।

छोटा हूं तो क्या ? मैं भी बड़ा बनूंगा ।।

एक दिन बापू जितना बड़ा हो लूंगा,
उस दिन मैं भी बड़े-बड़े काम करूंगा ।

जो बच्चे पढ़ने में होंगे कच्चे
पिंजरे में पाले-पोसे चिड़ियों के बच्चे

मैं उनको जीभर डाट पिलाऊंगा ।

"बच्चे ! तुम निरा पाजी औ नटखट
ऊधम छोड़, पढ़ना लिखना सीखो झटपट ।"
लेकिन् बापू जितना बड़ा तो होने दो,
मैं भी भैया जैसा पिंजरा ले लूंगा,
उसमें अच्छी-अच्छी चिड़ियां पालूंगा ।।

साढ़े दस बजने पर भी उस दिन
घर में शोर-शराबा नहीं होगा ।
जल्दी नहाने-धोने का हो हल्ला
डांट पिलाने, धमकाने का नाम नहीं होगा
क्योंकि मैं भी बापू जितना हो लूंगा ।।

छतरी कांधे डाल, पहन कर चप्पल,
घूम आऊंगा सारा शहर मुहल्ला ।
"कुरसी रखवाना कमरे के भीतर"
मास्टरजी के आने पर हुक्म करूंगा ।
जिस दिन मैं भी बापू जितना हो लूँगा ।।

गुरुजी कहेंगे "स्लेट कहां है लाग्रो"
"पढ़ने बैठो, कापी ग्रौर किताबें लाग्रो"

मुन्ने ! तुमको कुछ फिक्र नही है क्या ?

तुम सुनलो मैं कह दूंगा "अब बच्चा नहीं हूँ
जिस दिन मैं भी बापू जितना हो लूँगा ।।

मास्टरजी से सीधे-सीधे शब्दों में कह दूंगा,
अब मैं बापू जैसा हूं, अब छोटा नहीं रहूंगा

सुन कर मास्टरजी कह देंगे—"हां अब

ग्राज्ञा हो बाबू साहब ! घर जाऊंगा ।
जिस दिन मैं भी बापू जितना हो लूँगा ।।

साँझ पड़े भूलू आयेगा, मुझे बुलाने
खेल खेलने, संग जाने को ले जाने,

मैं धमका कर फटकारूँगा, भागो,

शोर न मचाग्रो, काम अभी निबटाऊँगा ।
जिस दिन मैं भी बापू जितना हो जाऊंगा ।।

भले मचा हो भारी रेला ठेलमठेला,
रथ मेले में एक-अकेला हो जाऊँगा,

मेरे मामा घबराये आयेंगे कहते 'खो जाओगे'
भीड़ से बचने आ जाओ कंधे पर, मैं कहदूंगा

देखो मामा, अब तो बापू जैसा, मैं नहीं डरूंगा ॥

जब बापू जैसा निडर बली हो जाऊंगा ?
मामा के कँधे पर मेले में क्यों जाऊंगा ?

मामा मुझे निहार कहेंगे, हां रे मुन्ने ।
अब वह मुन्ना नहीं रहा तू, मैं हंस दूंगा ।

जिस दिन मैं भी बापू जितना हो लूंगा ॥

जिस दिन पहले-पहल बड़ा मैं होऊंगा,
गंगाजी से नहा कर आई मां सोचेगी,

"शोर न शराबा, गुम सुम सा क्यों है घर ?
मैं उस दिन बच्चों जैसी हरकत न करूंगा ।

जिस दिन मैं भी बापू जितना हो लूंगा ॥

ताला खोल महरी को दूंगा दरमाहा
मां बोलेगी–"मुन्ना ! यह कैसा तमाशा ?
"मैं अब तो हूँ बापू जैसा, दरमाहा का—
पैसा दे दूँ" कह कर मां को समझाऊंगा ।
जिस दिन मैं भी बापू जितना हो जाऊंगा ।।

चूक जाएगा पैसा, राशन कपड़ा कुछ भी,
जो चाहो, भर-भर छकड़ा, मैं ला दूंगा ।
गाजन तल्ला के मेले में, मैं भी जाऊंगा ।
सब जायेंगे मेले में, मैं भी जाऊंगा ।
जिस दिन मैं भी बापू, जितना हो जाऊंगा ।

बाबू गज घाट पर बाबूजी की डोंगी ठहरेगी
बाबूजी छोटे रंग-बिरंगे जूते पहनायेंगे,
कह दूंगा, मैं तुम सा बड़ा हुआ हूं,
ये छोटे हैं, दे दो भैया को, समझा दूंगा ।
जिस दिन मैं भी बापू जितना हो जाऊँगा ।।

नकली गढ़

बूंदी गढ़ जब तक न ढहे
पानी तक भी न पीऊंगा ।
चित्तौड़ के राणा ने कहा,
मैं अपने प्रण पर ही रहूंगा ।।

कैसा प्रण कर लिया राणा ने
हाय, इन्सान के वश की बात नहीं
कैसे प्रण पूरा हो पायेगा ?
पल दो पल का सहज काज नहीं ।

मंत्री गण बोले अपने राणा से
कैसे आज अभी प्रण पूरा होगा
राजा बोले–साध्य न हो पर
सिद्ध करना ही मेरा प्रण होगा ।

बूंदी का गढ़ पास नहीं था,
चित्तौड़ से, तीन सौ कोस दूर,

गढ़ में हाड़ाओं का राज बड़ा,
एक से एक बढ़कर था शूर।

वहां छावनी हामू राजा की है,
डर क्या चीज जिन्हें मालूम नहीं हैं।
परख चुका राजा कितनी ही बार,
हाड़ाओं का गढ़ गिरता ही नहीं है।

मंत्री चकराये, कुछ सोच नहीं, पाये,
राणा भी अपने प्रण से डिग नहीं पाये,
बड़ी मुसीबत घिर आई शासन पर,
गढ जीते बिना राणा कुछ नही खाये।

मंत्री ने झट से यह जुगत निकाली,
आज रात ढा देंगे गढ़, सरकार।
मिट्टी का नकली बूंदी का गढ़
कर लेंगे हम झटपट तैयार।

राणा अपने हाथों से ध्वस्त करें,
प्रण–पालन का बन्दोवस्त करें,

बेकार ही जिन्दगी बर्बाद न करें,
अपने शब्दों से अपना शिकार न करें।

मंत्री ने चित्तौड़ की भूमी पर ही
उस रात, गढ़ बूंदी का बनवाया।
जब तैयार हुआ नकली गढ़ वह
मंत्री ने राणा से झट कहलाया।

नाम था कुम्भा, राणा का सेवक था,
हाड़ा-वंश में जन्मा वीर बड़ा था।
वह धनुष लिये वन से लौट रहा था।
चित्तौड़ में बूंदी गढ़ देख रहा था।

खबर सुनी उसने, ललकार उठा,
किसकी ताकत है? नकली गढ़ को ढ़ा दे
बूंदी हाड़ाओं का गढ़, नकली-असली
कुछ भी हो खबरदार! जो आगे पग धर दे

वह बोला-'हाड़ावंशी राजपूत हूं मैं,'
ढ़ाल बनकर रोकूंगा शमशीर,

नकली बूंदी गढ़ पर मिट जाऊंगा
मैं हूँ असली हाड़ावंशी वीर ।

सुबह-सुबह राणाजी सज-धज आए ।
सेना-सहित मिट्टी का गढ़ ढाने आए ।
देख उन्हें कुम्भा शेर दहाड़ उठा,
कुम्भा के रहते गढ़ को कोई ढा नहीं पाये ।

यद्यपि मैं हूं असहाय एक अकेला,
लेकिन बूंदी नाम की असह्य अवहेला ।
दूर रहो, मेरे रहते बढ़ेगा न कोई,
चाहे नकली गढ़ हो मिट्टी का ढेला ।

गरज कर वह शेर साधने लगा तीर
बूंदी की शान के खातिर डटा रहा वह वीर
राणा की सेना ने आ घेरा, उस अकेले को,
लेकिन जूझता रहा वह बूंदी का प्रियवीर

कुम्भा ने पीठ न फेरी हार न मानी,
सिंहद्वार पर डटा रहा वह अभिमानी ।
बलिदान हुआ आखिर लहुं-लुहान हुआ,
उस वीर से बूंदी का सफल अभियान हुआ

हमारी नदी

हमारी नदी छोटी सी
जिसकी टेढ़ी–मेढ़ी धार
गर्मियों में घुटनों तक
पानी में जाते उस पार।

ढोर जाते उस पार
बैलगाड़ी पार करती धार,
किनारे हैं बहुत ऊँचे,
पाट के ढलान का विस्तार।

तह में साफ–सुथरी रेत
कीचड़ का नहीं है नाम,
कांस खिल रहे एक पार
जैसे उजले हों धाम।

सारे दिन संगीत सुनाती
मैना बैठी डार डार,
रातों के अंधियारे में
हुआं हुआं करते सियार ।

उस पार गहरी अमराई
और ताड़ का सघन वन,
छांव छांव में बसा है गांव
गांव गांव में बस्तियां सघन ।

किनारे किनारे धार पर
उछल नहा रहे, नन्हें बच्चे,
गमछे गमछे पानी भर
अंग पोंछ रहे, छोटे बच्चे ।

नहा धोकर कभी कभी,
धार में कांटा फेंके सुबह–शाम ।
छोटी छोटी मछली मारे
अंजुरी भर लायें अपने धाम ।

बहुए रगड़ रगड़ कर रेता
हंस–हंस लोटे थाल मांजती
नदी किनारे कपड़े धोती
घर के काम निबटाने चल देती ।

ज्योंही आषाढ़ बरसने लगता,
नदी भर भर जल उतराती
मतवाली की तरह बढ़ जाती
नदी की तेज धार दन्नाती

धार का वेग होता अति तेज
कलकल का उठता है कोलाहल,
जहां–जहां गहराता गंदला जल,
वहां-वहां भंवर घिर आता चंचल ।

बरसात की सुहानी मौसम में
मच जाता वन वन में रोला,
दोनों पारों की वस्ती वस्ती में
त्यौहार की धूम का हो हल्ला ।

राजमहल

कोई नहीं जानता, कहां है,
मेरे राजा का राजमहल ?
गर पहचान किसी को होती,
टिक नहीं पाता यह राजमहल ।

दीवारें इसकी चांदी की,
छत सोने से मढ़ी सुन्दर,
हाथी दांत से बनी हुई
सीढ़ी की हर पैड़ी मनहर ।

महल के सत कोठे पर
सूयोरानी का परिवार,
सात सात राजाओं का धन
जिनका रत्नमढ़ा गलहार ।

सुन मां ! महल कहां राजा का,
तुझको बतलाऊं कान में ।
छत के पास जहां–
तुलसी–चौरा बना मकान में ।

सात समुन्दर के उस पार
राजकुमारी जाने कहां सो रही ?
इसका ठौर ठिकाना मेरे सिवा,
जग में कोई पा सकता भी नहीं।

उसके हाथों में कगने सोने के
कानों में कनफूल हैं सुन्दर
बाल लटकते पलंग से नीचे तक
लोट रहे धूल से लिपट-लिपटकर।

सोन घड़ी का परस पाकर
हो जायेगी उसकी निंदिया छू मन्तर
और हंसी के झरने से झरेंगे
उजियारे रतन धरती पर, झर-झर।

सुन मां ! कहां सो रही राजकुमारी
तुझको बतलाऊं कान में।
छत के पास जहां—
तुलसी–चौरा बना मकान में

जब तुम सब नहाने धोने
जाती हो नदिया के घाट पर,
तब मैं चुपचाप चला जाता
उसी छत के मैदान पर ।

जिस कोने में छांह पहुंचती
दीवारों को लांघ कर,
वहीं खुःश होकर मैं
बैठा करता पांव फैलाकर ।

मेरे संग छत पर छाव में
केवल मिन्नी बिल्ला होता है,
पता नही है, उसको भी
नाऊ भैया किस गांव रहता है ?

सुन मां ! कहां रहे नाऊटोला,
तुझको बतलाऊं कान में,
छत के पास— जहाँ
तुलसी-चौरा बना मकान में ।

वन में वास

मुझको भी राम की तरह
मेरे बापू वन में भेज दें
तुम क्या सोच रही हो
जा न सकूंगा क्या वन में?
मां ! क्या सोच रही हो मन में?

चौदह साल हुए कितने दिन,
मैं अंदाज नहीं लगा पाता;
दण्डकारण्य कहां है? जहां
बड़ा खेल-मैदान देख पाता।

जहां कहीं भी हो, जा सकता हूं,
भय का नाम मुझे नहीं डराता।
गर लक्ष्मण-सा भाई साथ हो,
तो वन भी धाम हो जाता।

जंगल में घनी छांह के बीच,
कुटिया बना कर मैं रहता;
कछारों की मिट्टी को सींच
आगे नदी का जल बहता ।

होती पास छोटी सी नाव
जाता पार नदी के द्वीप,
घास छोड़ भाग मृग
आ जाते बहुत समीप

अपने हाथों से उन्हें
सुबह और शाम घास खिलाता ।
गर लक्ष्मण सा भाई साथ हो
तो वन भी धाम हो जाता ।

वन में अनगिन होते पेड़,
तरह-तरह के होते फल हजार;
सिर के केशों में सजाता
फूलों से गूंथ-गूंथ हार ।

धरा की सेज भर देते
वृक्षों से गिर-गिर पके फल
झोली भर-भर ले आता
रखता उन्हें संभाल-संभाल ।

कमल के पत्ते पर शाम पड़े
भाई के संग फल खाता,
गर लक्ष्मण सा भाई साथ हो
तो वन भी धाम हो जाता ।

दुपहरी को धूप में, पीपल तले
बैठ घास पर सुस्ताता ।
चरवाहे के लड़के सा बस
बंशी में स्वर भरता रहता ।

शाखा पर बैठे मोर की पूंछ
रंग परी सी नीचे लटकती,
लंबी पूंछ उठाये गिलहरी
इधर-उधर भागी फिरती ।

छाया का सुख पाकर
जाने कब मैं सो जाता,
गर लक्ष्मण सा भाई साथ हो,
तो वन भी धाम हो जाता

सूखी शाखाएँ और डालियाँ
तोड़ तोड़ कर मैं ले आऊं,
शाम हुए, अलाव सुलगा कर
वन के छोर पर ताप तपे जाऊं

दूर कहीं गीदड़ आवाज करें,
चिड़ियाँ अपने घर को लौट चलें
शाखाओं की झाँझर से—
संध्या तारा की झाँको मिले।

माँ ! याद तुझे करता मैं
तेरा नाम सदा जपता रहता।
गर लक्ष्मण सा भाई साथ हो
तो वन भी धाम हो जाता।

दादा सरीखे बूढे मुनि
वन में रहते अनेक,
पैरों में झुक कर सुनाता
कहानी एक से एक

राक्षसों का डर कैसा, गुह जैसा
दोस्त हमेशा दांये रहता ।
सीता मेरे साथ नहीं होती,
तब रावण भी क्या कर लेता ?

केले, जामुन, आम के फल
हनुमानों को सप्रेम खिलाता,
गर लक्ष्मण सा भाई साथ हो
तो वन भी धाम हो जाता

मां ! गर तुम एक छोटा सा
भाई दे दो मुझे भी
हम दोनों मिल जुल कर
निभायें वन में रहने की बात भी ।

माँ ! तुम राम की तरह
सिखलाओगी लीला के गीत सभी
जटा बांधोगी, हाथों में
थमा दोगी तीर कमान भी ।

चित्रकुट पर अच्छी बरसातें
मैं भी वहां बिता पाता,
गर लक्ष्मण सा भाई साथ हो
तो वन भी धाम हो जाता

मूर्ख

मैं अम्बिका गुंसाई
न हुआ तो क्या हुआ ?
मां ! मैं पण्डित जी
न हुआ तो क्या हुआ ?

राजा बेटा गर न हुआ
खेलता फिरा डू डू डुआ ;
शहतूतों पर कोय रेषम के
गर ढूंढ़ता फिरा तो क्या हुआ ?

तो मुझे मूर्ख होना पड़ेगा ?
किन्तु मेरा क्या बिगड़ेगा ?
मूर्ख कहलाते वही, रात-दिन
आराम करते हैं वही ।

मूर्ख हैं वे, जो चरवाहे हैं,
जंगल में ढोर चराते हैं,
नदी के तट पर, वन-वन
दिन भर का वक्त बिताते हैं।

मूर्ख हैं वे, जो पाल खड़ी कर
लहरों पर नावें खेते हैं,
नदी पार की झीलों झीलों
झाऊ को काटा करते हैं।

चढ़ ऊंचे मचान, शान से
चिड़ियाओं को उड़ाते रहते हैं,
या दही की बहंगी लेकर
घर-घर के ताऊ बन जाते हैं।

या हाथ में ले हंसिया खुरपी
सिर पर टोकरा ढोता है
संध्या को लड़का किसान का
हारा-थका लौटा करता है।

देख देख मन छोटा होता,
दुपहर में भी रटता रहता।
हम स्लेट पर आँक मांडते,
मास्टर बैठा ऊघा करता।

ऐसा आता जी में, मूर्ख बनूंगा
परती में गीतों को गाऊंगा;
गाड़ीवान राह पर बढ़ते
तपी धूप में हवा सूंघते।

आकाश में चील फुदकती
भरी दुपहरी आती जाती;
संपियारो की बांसुरिया
बांसों में हवा बजाती।

गोदी में जंगल पूरब का
बादल का आंचल लहराता;
ज्वार सरीखा सिरस फूल भी
डाल–डाल पर उठता रहता।

ये पाठ भुलाने वाले कहें—
'तुम शाला से छुट्टी पालो,
मां ! ये पंडित तो नहीं हैं
पूरे गंवार इन्हें समझलो !

साथ-साथ फिरते चेले-चाले
धूमधाम ही उनके हो हल्ले
मैं तो इज्जत आदर न चाहूं
चाहता हूं तेरा केवल प्यार।

मां ! तू भी मुझे मूरख माने
गर अपनी गोद में नहीं रखे
तो भाग के जा पहुचूं [illegible]
बादलों के वादल शहर

उस शहर से उतर कर मां !
तुमको गीला कर दूंगा वरस कर
जब तुम पहुंचोगी घाट पर
उत्पात मचा दूंगा जी भर।

रात रहे, होते भिन सारा
उतर आऊंगा करके अंधेरा ।
आंधी के संग घुस आऊंगा
घर के द्वार धकेल कर ।

मां ! तू बोलेगी आंखें मलकर,
बहका है क्या राजा इन्दर !
मैं कहूंगा मतवाला आया है
तेरा मूर्ख पूत अपने घर ।
